शांति से जीवन जीने की कला

राजकुमार, द्रोणगिरि

लेखक की रचनाएँ

मुख्य पृष्ठ चित्रांकन : श्रीमती निष्ठा जैन, उदयपुर

शान्ति से जीवन जीने की कला

– राजकुमार जैन,
द्रोणगिरि

''हमारे जीवन-दर्शन का आधार पवित्रता हो। हम जितने उत्साह से कर्ज लेते हैं, उससे अधिक उत्साह से कर्ज चुकाने की आदत बनायें। अच्छा कार्य करने पर पुरस्कार पाने को हम जिस तरह उत्साहित/लालायित होते हैं, वैसे ही दोष होने पर दण्ड पाने के लिए भी उत्साहित हों, पूर्व में पाप हम करके आये हैं और उनका फल मिलने पर अन्य को दोष देना अनैतिक तथा अपने दोष मानकर निर्दोष होने की भावना व प्रयास नैतिक है।''

– इसी पुस्तक से

समर्पण चेरिटेबल ट्रस्ट का 28 वाँ एवं
राम-नन्दिनी ग्रंथमाला का 13 वाँ पुष्प

शान्ति से जीवन जीने की कला

लेखक
राजकुमार जैन, द्रोणगिरि

प्रकाशक
समर्पण
18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)
मो. 91 9414103492

शान्ति से जीवन जीने की कला

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ
[समर्पण द्वारा द्रोणगिरि में प्रस्तावित सुखायतन परिसर में वात्सल्यधाम के शिलान्यास समारोह के अवसर पर दिनांक 3-4 नवम्बर 2019 को प्रकाशित]

प्राप्ति स्थान : 18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर,
उदयपुर (राज.), मो. 91-9414103492

साहित्य प्रकाशन सहयोग राशि : 15/-

मुद्रक : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स
मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर
मो. 9928517346

प्रकाशकीय

'समर्पण' द्वारा सात वर्ष की अल्पावधि व सीमित साधन होने पर भी आप सबके असीमित स्नेह से 27 पुष्पों की 53 हजार प्रतियाँ प्रकाशित कर समाज के समक्ष प्रस्तुत की जा चुकी हैं।

राजकुमार शास्त्री द्वारा लिखित प्रेरक/नीतिपरक/आध्यात्मिक लेखों के संग्रह के रूप में यह 28वाँ पुष्प **'शान्ति से जीवन जीने की कला'** स्वाध्याय हेतु प्रस्तुत है। लेखों के नीचे रिक्त स्थान में लेखक की नई रचनायें प्रकाशित की गईं हैं, जो मननीय हैं। अभी तक हमारे द्वारा प्रकाशित सभी साहित्य को पाठकों ने हृदय से सराहा है। यह प्रसन्नता का विषय है कि हमें पुस्तक प्रकाशन के पूर्व ही अर्थ सहयोग प्राप्त हो जाता है। अत: बाद में हम **'जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ'** की भावना से पाठक को साहित्य उपलब्ध कराते हैं, इसमें जो राशि आती है, उसे अन्य प्रकाशन में आवश्यकतानुसार उपयोग करते हैं।

'शान्ति से जीवन जीने की कला' पुस्तक सर्व सामान्य द्वारा पठनीय ही नहीं, स्वाध्याय से दूर रहने वाले सहृदय व्यक्तियों तक पहुँचाने योग्य भी है।

पुस्तक के सुन्दर मुद्रण के लिए श्री दिनेश शास्त्री (देशना कम्प्यूटर्स) जयपुर, अर्थ सहयोग हेतु **श्रीराम-नंदिनी ग्रंथमाला** के संचालकों व अन्य साधर्मियों का भी आभार।

लेखन/मुद्रण में किसी भी प्रकार की त्रुटि हो तो कृपया हमें अवगत करायें, जिससे कि भविष्य में ध्यान रखा जा सके।

अब आपके हाथों में है - **'शान्ति से जीवन जीने की कला'**

निवेदक - **समर्पण परिवार**

मो. 9414103492

अन्तर्मन

आज सर्वत्र संपत्ति व समृद्धि बिखरी पड़ी है, परन्तु शान्ति गायब है। हर व्यक्ति जीवन के प्रत्येक दिन को सफल बनाने में लग रहा है और जिनके पुण्योदय है उन्हें सफलता मिल भी रही है परन्तु यह जीवन सार्थक कैसे हो इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं जा रहा। धन-पद-यश की प्राप्ति में ही जीवन की सार्थकता मान ली है। इस धन-पद की चाहत व सफलता में व्यक्ति अपने व अपनों से दूर होता जा रहा है।

मित्रो! '**वह सफलता किस काम की जो अपने व अपनों से दूर कर दे।**' मेरी दृष्टि में लौकिक जीवन में अपनों के व लोकोत्तर जीवन में अपने पास रहकर ही शान्ति प्राप्त की जा सकती है तथा शान्ति प्राप्त होने में ही जीवन की सार्थकता है अतः हम प्रस्तुत कर रहे हैं 'शान्ति से जीवन जीने की कला'।

जीवन में पारिवारिक/सामाजिक/आध्यात्मिक दृष्टि से अशान्ति के अनेक कारण हैं उनमें अज्ञान, अहंकार, अदेखसका (अन्य की उन्नति न देख सकना) का भाव, सहजता-सरलता-समर्पण-वात्सल्य का अभाव प्रमुख हैं।

इनके निराकरण के लिए हमारी विचारधारा कैसी हो, जिससे कि हम शान्तिमय जीवन जी सकें इसके लिए जो कुछ मेरी अल्पबुद्धि व स्थूल लेखनी से बन सका है वह आपके हाथों में है। यह पर्याप्त है या यही सही है ऐसा नहीं है। इस संबंध में आगम के आधार से अनेक

बिन्दु प्रस्तुत किये जा सकते हैं व किये जाने चाहिये। मैंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार जो कुछ आगमसम्मत विचार उचित लगे हैं, उनको यहाँ सभी के लाभार्थ प्रस्तुत किया है।

पुस्तक की उपयोगिता का आंकलन तो पाठक ही करेंगे, यदि नहीं करेंगे तो भी निरर्थक तो नहीं है, यह मुझे विश्वास है। तो आप पढ़िये 'शान्ति से जीवन जीने की कला' और अपने अमूल्य सुझावों से हमें लाभान्वित कीजिये।

दिनांक 20/09/19 — **राजकुमार,** द्रोणगिरि

मो. 9414103492

चेतन रस पीजिये

नरतन-जिन धर्म पाया, नया कुछ कीजिए।
छोड़कर कुसंग सब, सत्संग कीजिए।।
परनिंदा-कटु वचन, कभी मत बोलिए।
हितकारी वचनों को, अपना मुंह खोलिए।।
जो भी मिलें साधर्मी, जय जिनेन्द्र बोलिए।
घोलकर प्रेम रस, मधुर वचन बोलिए।।
प्रतिदिन जिन दर्शन कर, गुरु सेवा कीजिए।
दिन में ही भोजन कर, जल छान पीजिए।।
वीतराग वचनामृत, श्रद्धा से पीजिए।
घर घर में चर्चा हो, योगदान दीजिए।।
पुण्योदय पाया धन, परहित व्यय कीजिए।
यदि मिला सुस्वर तो, जिन भक्ति कीजिए।।
तन-चेतन भिन्न है, भेद ज्ञान कीजिए।
आत्मानुभव द्वारा, चेतन रस पीजिए।।

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट
एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में तन-मन-धन सब अर्पण।
आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।

ट्रस्ट का नाम - समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट
स्थापना तिथि - 20 सितम्बर 2014

ट्रस्ट मण्डल -

संरक्षक - 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री चन्द्रभान जैन घुवारा, 3. श्री कन्हैयालाल दलावत, 4. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 5. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 6. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा।

अध्यक्ष - राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** - अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** - रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **मंत्री** - डॉ. ममता जैन उदयपुर, **सहमंत्री** - पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** - पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. महेश जैन भोपाल, रतनचन्द शास्त्री कोटा, अगम जैन उदयपुर।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा

उद्देश्य - 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना। 2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना। 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना। 4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना। 5. चिकित्सा व शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त सहयोग को वितरित करना।

कार्य पद्धति - 1. सबसे सहयोग-सबको सहयोग की भावना से साधर्मियों से प्राप्त सहयोग साहित्य/चिकित्सा/शिक्षा पर आवश्यकतानुसार वितरित करना। हमारा प्रयास होगा कि फण्ड बनाने

की अपेक्षा प्रतिवर्ष प्राप्त सहयोग को उसी वर्ष वितरित कर दिया जाये। 2. व्यक्ति या संस्था के नाम के लिए नहीं, पर काम के लिए काम। 3. सर्वोपयोगी (अपनी समझ के अनुसार) योजना को सबके समक्ष रखना, यदि सहयोग प्राप्त हुआ हो तो उस योजना/कार्य को करना, नहीं तो..... ? 3. अच्छी बातें-सच्ची बातें (अर्थात् शाश्वत सत्य) ज्यादातर लोगों तक पहुँचे, ऐसा प्रयास करना।

गतिविधि - 1. साहित्य प्रकाशन, 2. **संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, 3. **सुखायतन - सुखार्थी साधर्मियों के लिए निःशुल्क/सशुल्क आवास-भोजन की व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक पर्यावरण प्रदान करना,** 4. साधर्मी वात्सल्य योजना - साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/ चिकित्सा सहयोग पहुँचाना।

निवेदन - यह छोटी-सी संस्था आपके सहयोग से समाज में कुछ कार्य करना चाहती है, यदि आप हमारे विचारों से सहमत हों, तो आप भी आर्थिक सहयोग प्रदान कर या अपनी सहमति देकर हमारा उत्साहवर्धन कर सकते हैं।

हमारा उद्देश्य कुछ अलग ढंग से समाज में जागरूकता लाना व सहयोग करना है। आपके सुझाव व सहयोग सदैव अपेक्षित हैं। आप जब, जो, जैसे कर सकते हैं, आत्महित व समाजहित में जरूर कीजिए। बस यही अनुरोध है।

निवेदक

समस्त ट्रस्ट मण्डल, समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट,

उदयपुर (राजस्थान)

नोट - आप अपनी सहयोग राशि '**समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट**' के नाम से, पंजाब नेशनल बैंक, पंचशील मार्ग, उदयपुर के खाता क्रमांक 0458000100404840 में जमा करा सकते हैं।

IFSC Code - PUNB 0045800

विषयानुक्रमणिका

क्र. विषय	पृष्ठ
1. प्रशंसनीय कार्य, प्रशंसा के मोहताज नहीं होते	11
2. सबको स्वतंत्र-स्वाधीन समझो	13
3. बोए बीज बबूल के-आम कहाँ से होय	16
4. मोह अधोगामी होता है और अधोगमन ही कराता है	20
5. राग का विस्तार-राग का नाशक है	24
6. शान्ति का कारण तन-धन नहीं, धर्म है	28
7. अतिक्रमण अधर्म है, प्रतिक्रमण धर्म	32
8. नैतिकता है शान्ति का प्रथम सोपान	36
9. सामंजस्य से ही लौकिक जीवन में शान्ति संभव है	40
10. बराबरी किससे ?	43
11. अनुशासन बंधन नहीं, सुरक्षा है	46
12. आदर दो-आदर लो	50
13. शान्ति की सहेली - समता	55
14. संतान को भेदज्ञान के संस्कार दो	58
15. परिजन हैं बस, तन संबंधी	63
16. धैर्य	65
17. समन्वय	69
18. संकुचित/स्वार्थी दृष्टि बदलिये	74
19. सोच बदलें और शांति से जिएं	81
20. भगवती भवितव्यता	85

प्रस्तुत प्रकाशन में सहयोग करने वाले महानुभाव

1. श्रीमती नंदनीबाई जैन-डॉ. ममता जैन, द्रोणगिरि	3100/-
2. श्रीमती निष्ठा-सुश्री विपाशा जैन, उदयपुर	2100/-
3. श्री विद्या-सागर जैन, उदयपुर	2100/-
4. श्री नेमिचन्द चंपालाल भोरावत चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर	1100/-
5. एक साधर्मी बहिन	1100/-

1

प्रशंसनीय कार्य, प्रशंसा के मोहताज नहीं होते

हम कोई भी कार्य करते हैं, वह काम पूरा हो इससे पहले ही हमारी नजर प्रशंसक और कान प्रशंसा के शब्दों को खोजने लगते हैं।

काम अच्छा है बुरा, उपयोगी है या अनुपयोगी पर प्रशंसा होना चाहिये। हमने शायद काम, अन्य किसी प्रयोजन से नहीं मानो दूसरों की प्रशंसा सुनने के लिए ही किया हो।

यह एक तथ्य है कि लोग अच्छे काम की प्रशंसा भी करते हैं, करना भी चाहिये, क्योंकि प्रशंसा से काम करनेवाले का उत्साह बढ़ता है और अन्य को प्रेरणा मिलती है। परन्तु इस सत्य को भी समझना चाहिये कि 'प्रशंसनीय कार्य व प्रशंसनीय कार्य करनेवाले प्रशंसा के मोहताज नहीं होते।' वे तो स्व–पर कल्याणकारी कार्य 'स्वान्तः सुखाय' करते जाते हैं। पुण्योदय हो तो लोग प्रशंसा करते भी हैं, पुण्योदय न हो तो प्रशंसा नहीं भी करते हैं इतना ही नहीं पापोदय हो तो निंदा भी करते हैं।

सच में किसी की निंदा से काम निंदनीय व किसी की प्रशंसा से काम प्रशंसनीय नहीं हो जाता। यदि कार्य आगमानुकूल, स्व-पर कल्याणक है तो भले ही लोक में निंदा हो पर वह कार्य प्रशंसनीय/करणीय है और जो कार्य आगमानुकूल/परम्परा के प्रतिकूल है, स्व-पर का बुरा करने वाला है तो भले ही लोक में प्रशंसा हो पर वह कार्य निंदनीय व त्याज्य है।

मित्रो! हमें अच्छे काम की मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से प्रशंसा करना चाहिये, जिससे लोग अच्छे काम में अग्रसर होते रहें, परन्तु हम प्रशंसनीय कार्य करते समय प्रशंसक न खोजें, प्रशंसा सुनने को लालायित न रहें, निंदा हो तो भी न घबरायें, महापुरुषों और कर्मोदय को याद कर प्रसन्नतापूर्वक कार्य करते रहें।

अच्छा कार्य करते हुए प्रसन्नता का होना ही लाभ है, और प्रशंसा की बाट जोहना ही हमारा नुकसान है। जैसे ही हमने प्रशंसा का इन्तजार किया, प्रशंसा के लिए काम किया तब से ही हमारी विशुद्धि की 'माइनस मार्किंग' प्रारंभ हो जाती है। अतः प्रसन्नतापूर्वक, प्रसन्नता के लिए काम करो प्रशंसा के लिए नहीं और दूसरों के अच्छे काम देखकर प्रसन्नतापूर्वक प्रशंसा करो यही प्रसन्न रहने/रखने की कला है। ❍

2

सबको स्वतंत्र-स्वाधीन समझो

हम हर क्षण शान्ति से जीवन जीने के लिए अशान्ति/आकुलता का माहौल बनाये रखते हैं। सच ही कहा जाता है कि 'शान्त रहो, शान्ति बनाये रखें' इत्यादि शान्ति बनाये रखने की सूचनाएँ ही अधिक अशान्ति फैलाती हैं।

हमारा हर क्षण प्रयास है कि हमारे जीवन में शान्ति हो/सुख हो और इसके लिए हम एक उपाय यह करते हैं कि मुझे जो पसन्द है, वही सब करने लग जायें तो मैं सुखी हो जाऊँ, मेरा जीवन आनंद से भर जाये।

मुझे जो दाल-सब्जी अच्छी लगती है, पूरा परिवार वही खाये, मुझे जैसे कपड़े पसन्द हैं वैसे ही दादा हों या पोता सब पहने, मैं जहाँ घूमने जाना चाहता हूँ, परिवार वहीं चले, जो नेता मुझे अच्छा लगता है, मेरे परिचित उसी को वोट दें। इस तरह खाना, पीना, पहिनना, घूमना, पिक्चर देखना, यहाँ तक कि सोचना भी मेरे अनुसार हो तो बस जीवन में आनंद ही आनंद है। ऐसा हो जाये इसके लिए हम परिजनों को समझाते, डराते, रुलाते, हंसाते, मनाते रहते हैं और अदृश्य ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि सब हमारे बताये मार्ग पर चलने लगें।

अब मजे की बात यह है कि घर/समाज का हर सदस्य यही प्रार्थना कर रहा है और पसन्द सबकी अलग। सास सोचती बहू बदले, बहू सोचती सास को अकल आ जाये। पिताजी सोचते हैं आज के बच्चों को अकल तो है नहीं, विनम्रता भी भूल रहे हैं; पुत्र सोचता है पिताजी संग्रहालय की वस्तु होते जा रहे हैं, यदि मेरी मान लें तो जीवन सुधर जाये।

इस तरह ग्राहक-दुकानदार, डॉक्टर-मरीज, नौकर-मालिक, पति-पत्नी सब अपने को चतुर मानकर दुनिया को अपने अनुसार चलाकर सुखी होना चाहते हैं और कोई भी अपने अनुसार चलता नहीं तो हमारा दुःख/तनाव और बढ़ जाता है, दुनिया स्वार्थी लगने लगती है।

परन्तु विचार करें प्रत्येक जीव अपनी योग्यता, रुचि, इच्छा, भाग्य, होनहार के अनुसार चले या और किसी की इच्छा के अनुसार ? यदि दूसरों के भरोसे चले तो उसके कर्म/योग्यता का क्या होगा ?

जब आप पिताजी के अनुसार धोती-कुर्ता नहीं पहनते, मंदिर नहीं जाते, तीर्थयात्रा नहीं करते तो फिर वह कैसे जीन्स पहनें, कश्मीर घूमने व पार्टियों में शामिल होने लगें ? जब आप सास के अनुसार घूंघट डालना पसन्द नहीं करती तो सास आपके साथ होटल में घूमना पसन्द कैसे करे ?

अरे भाई! जब जिस शरीर में हम रह रहे हैं, जिसकी सेवा कर रहे हैं उसके दांत, गाल और एक बाल भी हमारी इच्छा के अनुसार रंग नहीं बदलता तो बेटे, बहू या अन्य कोई कैसे बदलेगा?

सभी जीव स्वतंत्र हैं, सबमें समान शक्तियाँ हैं, सच में कोई छोटा-बड़ा नहीं, कमजोर-बलजोर नहीं, सभी अनादि अनंत हैं और यह शरीर सभी का बदल रहा है और छूट भी जायेगा, अतः अन्य किसी को नहीं अपने विचारों को बदलो, मान्यता बदलो। सबको समान समझो तो मान चला जायेगा। सबको स्वतंत्र-स्वाधीन समझो तो क्रोध नहीं होगा, तनाव नहीं होगा, निर्भय और निर्भार हो जाओगे यही है 'शान्ति से जीवन जीने की कला'।

'हमारे अनुसार कोई नहीं चलता' ऐसा पढ़ने के बाद भी बच्चों को सही रास्ता पर लाने का विचार होगा पर यह मानकर चलना कि उसकी होनहार भली होगी तो ही सही रास्ते पर आयेगा। यदि वह सही रास्ते पर आये तो अपनी भली होनहार से, हमारे कहने से नहीं और नहीं आया तो भी उसकी बुरी होनहार से हमारे कारण नहीं।

'जिनवाणी में कर्तृत्व का निषेध है, कर्त्तव्य का नहीं।' अतः भले ही प्रेरित करो पर क्रोध और अहंकार से बचो यही है '**शान्ति से जीवन जीने की कला**'। ❍

3

बोए बीज बबूल के-आम कहाँ से होय

बच्चों को मिठाई और चटपटी चीजें अच्छी लगती हैं। पर करेले की सब्जी का नाम सुनकर ही उपवास करने का मन हो जाता है। मलेरिया बुखार में भी उन्हें हलवा/गुलाबजामुन व पकौड़ी अच्छी लगती है पर कुनेन की गोली का नाम सुनकर ही कड़वाहट मुँह के बाहर तक आ जाती है और बुखार नहीं है का उद्घोष रजाई ओढ़ते हुए कर देते हैं।

पर जो बड़े/समझदार हैं वह जानते हैं कि चटपटी चीजें जवान को चटोरी और पेट को बीमार करती हैं और करेले की सब्जी भले ही कड़वाहट से भरी हो पर वह गुणकारक है तथा मधुमेह जैसे रोग की नाशक है अतः जब अवसर मिले करेले भी रसगुल्ला समझ कर खाना चाहिये। वह जानते हैं कि मलेरिया में मिठाई व तली वस्तुयें रोगवर्धक हैं अतः कुनेन की कड़वी गोली भी प्रेम से समय पर ले लो वही हमारे स्वास्थ्य लाभ का कारण होगी।

बस इसी तरह अज्ञानी/बालबुद्धि अर्थात् मैं कमजोर

आत्मिक स्वभाव वाला झूठी-सच्ची प्रशंसा सुनने का व्यसनी यदि कभी निंदा सुनने को मिल जाये तो दुनिया छोड़कर भागने के लिए तैयार हो जाता हूँ। पुण्योदय में मिले हुए साधनों को अपने परिश्रम से की हुई कमाई मानकर बटोरकर रख लेना चाहता हूँ, अकेले ही भोगना चाहता हूँ परन्तु कभी पापोदय में प्रतिकूलता आ जाये तो चिल्ला- चिल्लाकर दुनिया को दोषी ठहराता हूँ और उस प्रतिकूलता में भूखा रहने/दुःख भोगने सबको बुलाता हूँ और कोई न आये तो और दुःखी होता हूँ।

परन्तु जो समझदार हैं, जिनका आत्मिक बल प्रबल है, वह जानते हैं कि जिस तरह रात-दिन मिलकर ही एक दिन होता है, अकेले दिन से नहीं, कृष्ण पक्ष-शुक्ल पक्ष मिलकर ही एक माह होता है, अकेले शुक्ल पक्ष से नहीं, बस इसी तरह पुण्य-पाप के फल में निंदा-प्रशंसा के साथ ही सांसारिक जीवन चलता है अकेले प्रशंसा से नहीं।

प्रशंसा में तो हम चने के झाड़ पर चढ़ जाते हैं, पर पाप के उदय में मिली निंदा/बुराई हमें मजबूत जमीन पर लाती है, हमें आत्मावलोकन का अवसर देती है, दोषों के प्रक्षालन हेतु निंदा अच्छे प्रक्षालक/साबुन की तरह है।

अधिक प्रशंसा हम में अहंकार उत्पन्न करती है, जबकि

निंदा करेले या कुनेन की तरह हमें निर्दोष होने का अवसर देती है।

एक और प्राकृतिक सत्य है कि हम जो बोयेंगे वही उगेगा/फलेगा, जो चाहेंगे वह नहीं फलेगा। 'बोए बीज बबूल का आम कहाँ से होय'। साथ ही यह भी ध्यान रखने योग्य है कि हर बीज के उगने/फलने का भी अपना एक निश्चित समय है। हम अपने भावों/विचारों/परिणामों/कर्मों के बीज बोते तो हैं परन्तु उनके उगने/फलने में समय लगने से हम भूल जाते हैं कि यह बीज हमने ही बोये थे। अधिकांश तो हम पाप के फलों का कारण अन्य को मानकर उसे ही दोष देने लगते हैं।

मित्रो! यह अकाट्य सिद्धान्त है कि हमें जो भी निंदा/प्रशंसा मिल रही है वह अपने द्वारा बोये बीज का ही फल है। हम दूसरों की निंदा करने, मजाक बनाने, बुद्धू-बेवकूफ बनाने से कब चूकते हैं। पर जब अपनी निंदा होने का नंबर आया तो रोने लगते हैं। अन्य की सच्ची प्रशंसा करते भी पसीना आता है और हम अपनी झूठी प्रशंसा सुनने को लालायित रहते हैं। तो भैया! ऐसा कभी पुण्योदय से हो भी जाये पर अन्ततः तो अपयश ही होगा।

मेरे लाभ-हानि, यश-अपयश, सुख-दुःख का कारण

अन्य कोई व्यक्ति/वस्तु/भगवान नहीं है। मेरे भविष्य का निर्माता मेरा स्वयं का वर्तमान है अर्थात् मेरे वर्तमान के भाव/विचार/परिणाम/कर्म ही हैं।

सच ही कहा है –

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चित वे ही देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।।

हर परिस्थिति में यही है '**शान्ति से जीवन जीने की कला**'।

पुरुषार्थ

मंदगति से ही चलो पर, मित्र ! तुम चलते रहो।
मंजिल भले ही दूर हो, न निराश हो बैठे रहो।।
होकर निरुद्यम बैठना, दुर्भाग्य की पहचान है।
अनवरत उद्यमशील को ही, मिले धन-पद-ज्ञान है।।
उत्साह से सम्पन्न हो तुम, अहर्निश जागृत रहो।।1
पुण्य बिन मिलता नहीं कुछ, यह सनातन सत्य है।
पर आलसी भी पा न सकता, यह भी तो इक तथ्य है।।
पुरुषार्थ से ही सुख मिले, बढ़ते चलो कहते रहो।।2।।
हो सतत् पुरुषार्थ सम्यक्, मिलते निमित्त स्वयमेव ही।
काललब्धि है तभी, भवितव्यता भी है वही।।
वस्तुस्वभाव को जानना ही पुरुषार्थ सम्यक् है अहो।।3।।
पुरुषार्थियों से ही प्रगति पथ, चले देश-समाज भी।
विनय-उद्यम युत पुरुष को, मिले मुक्ति राज भी।।
जब तक मिले न लक्ष्य अपना, तब तक सतत चलते रहो।।4।।

4

मोह अधोगामी होता है और अधोगमन ही कराता है

आपने एक कहावत सुनी ही होगी 'मूल से ब्याज अधिक प्यारा होता है।' अर्थात् मनुष्य को अपने बेटे से भी अधिक पोता प्रिय होता है।

विचार करें दादा को पोता प्रिय है, पोते को दादा नहीं। दादा, पोते के लिए मंदिर/स्वाध्याय/सामायिक छोड़कर खिलाने/घुमाने में लग सकता है, पर पोता दादा के लिए अपना सीरियल नहीं बदल सकता, टी.वी. की आवाज कम नहीं कर सकता। इसे ही कहते हैं मोह अधोगामी है, नीचे की ओर बहता है।

घर में संतान के जन्म लेते ही उसके खाने-पीने, रहने, कपड़ों की चिंता में माता-पिता लग जाते हैं, पर उसी घर में स्वयं के माता-पिता रहते हों तो उनका कमरा खाली करवाकर किराये पर देने का मन होता है।

संतान के लिए ऋण लेकर भी गाड़ी खरीदकर कॉलेज

भेजते हैं और दादाजी या माता-पिता के लिए व्हीलचेयर लेना हो तो महीनों सोचते रहते हैं।

बच्चों को 500-700 रुपये का धूप का चश्मा दिला सकते हैं, परन्तु वृद्ध माता-पिता का चश्मा सही कराने को पैसे/समय नहीं होता।

संतान के साथ पिक्चर जाने का समय है, माता-पिता के साथ मंदिर जाने का नहीं, बच्चों के साथ जैसलमेर, गोवा, कन्याकुमारी घूमने हर वर्ष जाना ही चाहिये नहीं तो बच्चे कब घूमेंगे? पर उसी समय माता-पिता के साथ तीर्थ पर जाना कष्ट कर लगता है। यही है अधोगामी मोह।

यदि दादा-दादी, माता-पिता का सुबह देह वियोग हो जाये तो शाम को ही उठावना करके काम पर लग जाता है, मानो वे मरने के लिए ही जी रहे थे, उनका काम पूरा हुआ। परन्तु यदि पुत्र-का वियोग हो जाये तो 6 महिने तक संतुलित नहीं हो पाता। जबकि किसी की भी मृत्यु आयु पूर्ण होने/समय आने पर ही होती है यह अकाट्य नियम है। दादा या पोता किसी का भी वियोग सच में अनहोना नहीं है। पर मोह अधोगामी है, नीचे की ओर बहता है/बढ़ता है। इस अधोगामी मोह के व्यवहार से प्रत्येक घर में अशांति का वातावरण बन रहा है, दादा-दादी, माता-पिता जबरदस्ती

उदासीन बन रहे हैं या बनाये जा रहे हैं, जो कि मानवीय दृष्टि से भी उचित नहीं है, तब धार्मिक दृष्टि से उचित कैसे कहा जा सकता है ?

'जो मैं नहीं, मेरा नहीं, मेरे सुख-दुःख का कारण नहीं उसे मैं/मेरा या सुख-दुःख का कारण मानना ही मोह है।' मैं अपने को स्त्री-पुरुष, गोरा-काला, निर्धन-धनवान मानकर, सारे परिजनों को अपना तथा इनको ही अपने सुख-दुःख का कारण मानकर निरन्तर तनाव/चिन्ता में रहता हूँ। पर हमने देखा कि जो मोह अधोगामी हो वह भविष्य में मुझे भी अधोगमन ही करायेगा, नरकादि में भ्रमण करवा कर संसार परिभ्रमण ही करायेगा।

हम अब इस बात को समझने के लिए समय/बुद्धि लगायें कि दुनिया में लौकिक दृष्टि से माता-पिता, भाई बहिन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री मेरे हैं, घर-दुकान मेरे कहे जाते हों परन्तु सच में यह मेरे नहीं, मैं इनका नहीं हूँ क्योंकि 'मेरा सो जावे नहीं, जावे सो मेरा नहीं।' जो मुझे छोड़कर जा सकते हैं, सच में वह मेरे नहीं हैं। लोक में सामाजिक/पारिवारिक व्यवस्थाओं को चलाने के लिए संबंध बताये जाते हैं हमें उनको उतना ही सत्य मानना चाहिये।

सच में पारलौकिक दृष्टि से तो सभी से मोह त्यागने योग्य

ही है, परन्तु जब तक निर्मोह दशा न हो तब तक हम अत्यन्त स्वार्थी/अनैतिक मोह में रहकर मात्र भविष्य की पीढ़ी के प्रति ही जिम्मेदारी निभाने का कर्तव्य न समझें अपितु अपनी आदरणीय पहली पीढ़ी को भी प्राथमिकता दें, संतान को भी यही कर्तव्य सिखायें, यह भावना हमें वर्तमान में सम्मान व सुख देगी एवं वृद्धावस्था में हमें भी सेवा करनेवाले मिलेंगे या सच में तो सेवा कराने की आवश्यकता ही नहीं होगी तथा पुण्य का कारण होने से धर्म मार्ग की प्राप्ति में सहायक बनेंगे, यही है '**शान्ति से जीवन जीने की कला**'। ❍

क्यों पर की हम परवाह करें

हम मस्त हैं अपनी मस्ती में, क्यों पर की हम परवाह करें।
चैतन्य रसामृत पीते हैं, जड़ विषयों की क्यों चाह करें।।

षट द्रव्यमयी जग है अनादि, इसमें नूतन कुछ न होता।
परिणमन अनादि सुनिश्चित है, किसको लखकर हम वाह करें।।

संयोगों का होना वियोग, पर्यय लयधर्मा है स्वभाव।
अनहोना होता कभी नहीं, तब फिर क्यों शीतल आह भरें।।

पर कोई सुख न दे सकता, न ही कोई दुखदायी है।
सुख सागर निज शुद्धातम है, हम क्यों न उसकी राह चलें।।

पर की चिन्ता करके अब तक, चेतन की चिता जलाई है।
चेतन के चिंतन अनुभव से, भवभ्रम का अब हम दाह करें।।

5

राग का विस्तार–राग का नाशक है

शीर्षक पढ़कर निश्चित ही इसे सुधारने की तैयारी कर रहे होंगे, पर अभी शीर्षक मत सुधारिये, पहले लेख पढ़ लीजिये क्या पता शीर्षक सही हो।

आपने देखा/सुना होगा कि गुब्बारे में हवा कम हो तो उसको फोड़ना थोड़ा कठिन है पर हवा पूरी भरी हो तो आल्पिन के छूने मात्र से फूट जाता है।

बस इसी तरह जब तक हमारा राग मात्र अपने परिजनों तक सीमित है, तब तक राग गहराई लिये हुए है उसे छोड़ना कठिन है परन्तु जब यह राग व्यापक हो जाता है, सर्व जीवों के कल्याण की भावना से भरपूर हो जाता है, तब राग का विस्तार होते ही उसमें झीनापन हो जाता है और वैराग्य का कोई एक प्रसंग बनने पर (बाल सफेद होना, नीलांजना की मृत्यु, पशुओं का बंधन, मेघमाला का विघटन) राग की पतली चादर फट जाती है और वैराग्य तथा वीतरागता प्रकट हो जाती है।

एक प्रश्न हमारे मस्तिष्क में आ सकता है कि राग तो

दुःखद है, राग को घटाने/मिटाने का सन्देश आचार्यों ने दिया है, फिर राग के विस्तार की बात क्यों कह रहे हैं ?

यह बिल्कुल सत्य है कि राग-द्वेष और अज्ञान दुःखस्वरूप हैं, अशान्ति के कारण हैं तथा वीतराग-विज्ञान ही सुख/शान्तिमय है और सुख का कारण है। सच में तो किसी भी प्रकार का राग सुखद नहीं है। परन्तु जो राग मोह के साथ है अर्थात् परपदार्थों में यह मेरे हैं, मैं इनका स्वामी हूँ - ऐसा मानकर जिन माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी के प्रति राग होता है, वह बहुत गहराई लिये हुए राग है, इसको मिटाना कठिन है। पहले इस राग का विस्तार कर पतला करो, इसकी मोटाई कम करो, तब यह जल्दी नष्ट हो सकेगा। इसीलिये आचार्य अमितगति लिखते हैं -

'प्रेम भाव हो सब जीवों में' या जुगलकिशोरजी 'मेरी भावना' में लिखते हैं 'मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।' सारे जगत के जीवों के कल्याण का राग विस्तार लिये हुए है, पर बहुत पतला है इस राग का अभाव कर वीतरागता शीघ्र पाई जा सकती है।

स्थूल राग अर्थात् मोह युक्त राग तो 'अयं निजः परोवेति' यह मेरा है, यह पराया है, इस तरह के परिवार/जाति/समाज/धर्म के भेद भाव वाला होता है जो बहुत मोटाई/गहराई वाला

राग है, पर जो उदार चरित वाले हैं, वह तो 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अर्थात् सभी प्राणियों को अपने समान देखते हैं, अपने समान ही क्या भगवान के समान देखते हैं, जीवों की वर्तमान की भूल को एक समय की भूल मानते हैं, वे तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सारी पृथ्वी ही परिवार के समान है या 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की उदात्त भावना रखते हैं। वह मेरे-तेरे के काले राग से निकल कर लालिमा युक्त बारीक राग की स्थिति में आकर राग के अभाव हेतु अग्रसर होते हैं, अतः 'राग का विस्तार - राग का नाशक है।' सत्य ही है।

हम वर्तमान में मोटे/गहरे/काले/स्थूल राग में उलझे हुए हैं, हम अपना बुरा करके दूसरों का भला कर सकें, यह तो सोच ही नहीं पाते, अपना भला हो और दूसरों का भी भला हो यह भी हमारा मन नहीं मानता, हमारा मन तो अपना भला और दूसरों का बुरा ही नहीं, अपना बुरा करके भी दूसरों का बुरा करके प्रसन्न होता है ।

जितने धन/पद/पुरस्कार हैं, वह सब मुझे और मेरे परिवार को ही कैसे भी मिलना चाहिये। अपने बेटा-बेटी ही होशियार हैं बाकी तो..।

बस यही तन-मन-धन-पद और परिजनों का राग, मोह है, यह टूटना/छूटना आसान नहीं है। इसी मोह के कारण हम

पापों/कषायों में लगकर दुःखी होते हैं, तनाव में रहते हैं।

यदि हम अपने राग को विस्तार दें, परिजनों/समाज से बाहर प्राणी मात्र के सुख-आनंद को चाहें सभी को समान देखें, सभी की योग्यता/प्रतिभा/परिश्रम का सम्मान करें, न्याय-नीति से कार्य करें तो निश्चित ही क्रोध-मान-लोभ आदि कषाय कम होगी। कषाय कम होगी तो शान्तिमय जीवन होगा। यही है शान्ति से जीवन जीने की कला।

मित्रो! यह ध्यान रखना कि राग का विस्तार करने का कहा है, राग को अच्छा/हितकर/धर्म मानने का नहीं। राग का विस्तार राग को नष्ट करने की ही कला है, सुखमय तो एक मात्र वीतरागता ही है।

जिस तरह काँटा, काँटे को निकाल कर स्वयं बाहर निकल जाता है, तभी व्यक्ति को चैन पड़ती है, उसीप्रकार यह राग का विस्तार अर्थात् शुभराग, मोटे-स्थूल-अशुभ राग को निकाल कर जब स्वयं भी बाहर/नष्ट हो जाता है, तभी वीतरागता प्रकट होकर पूर्ण शान्ति की प्राप्ति होती है। ❍

पर का मैं क्यों कुछ करूँ? क्या मैं हूँ मजदूर?
पर मेरा कुछ क्यों करे? क्या मैं हूँ मजबूर?
न तो मैं मजदूर हूँ, न मैं हूँ मजबूर।
गुण अनंत मजबूत मैं, सब चिन्तायें दूर।।

6

शान्ति का कारण तन-धन नहीं, धर्म है

लगभग 25-30 वर्ष पहले तक वैवाहिक संबंध जाति आधारित हुआ करते थे। जैसे कि गोलापूर्व-परवार-खण्डेलवाल-बघेरवाल आदि। इन जातियों के अंदर ही वैवाहिक संबंध हुआ करते थे, इनमें पारस्परिक संबंध भी अन्तर्जातीय संबंध मानकर तिरस्कृत किये जाते थे, तब जैन का वैष्णव आदि में तो कल्पना ही असंभव थी।

आज समय परिवर्तित हुआ आवश्यकता व सुविधा के अनुसार अन्तर्जातीय संबंध के संबंध में मान्यताओं में परिवर्तन हुआ। माता-पिता का हस्तक्षेप भी कम हुआ और अब संतान ही अधिकांश पारस्परिक स्नेह पर आधारित संबंध तय कर माता-पिता को उनके कर्त्तव्य के बोझ को कम करने लगे।

इस कर्त्तव्य या अधिकार के छिनने से अनेक माता-पिता दुःखित होकर संतान से संबंध-विच्छेद की भी धमकी देने लगे (मोह के कारण वह धमकियाँ अधिक कारगर नहीं हुईं)।

लोग कह सकते हैं कि पहले जाति में ही संबंध होते थे,

आज विजातीय होने लगे हैं। परन्तु मेरा मानना है कि आज भी जाति ही मुख्य है। डॉक्टर+डॉक्टर, इंजीनियर+इंजीनियर, प्रशासनिक अधिकारी+ प्रशासनिक अधिकारी, सीए+ सीए आदि। इस तरह अब नई जातियों का जन्म हो गया है।

पहले जीवन में शान्ति के लिए गोलापूर्व-परवार-बघेरवाल जातियों को कारण माना गया और अब शान्तिमय जीवन जीने के लिए डॉक्टर, इंजीनियर आदि समान विचारों का होना मानकर वही संबंध होने लगे।

पर क्या सच में मात्र जन्मना प्राप्त जाति/समाज या व्यावसायिक जाति/समाज की मुख्यता से संबंध रखनेवाले लोग शान्तिमय जीवन जी रहे हैं?

सच में तो जबतक सुख का स्वरूप और सुख का सच्चा उपाय पता नहीं होगा, तब तक शान्ति का जन्म भी जीवन में नहीं हो सकता।

शान्ति निराकुलता में है। जहाँ तनाव/आकुलता/चिंता है, वहाँ दुःख ही है। आकुलता दूर करने, शान्ति/समताभाव लाने का एक मात्र कारण धर्म है, परन्तु हमारे वैवाहिक/पारिवारिक संबंधों या मित्रता का कारण तन अर्थात् जाति या धन अर्थात् व्यवसाय ही है तो वहाँ समता कैसे आ सकती है?

व्यावसायिक समानता आपको एक साथ जाने-आने, व्यावसायिक परामर्श लेने-देने, मिलकर पैसा-पद प्राप्त करने में (यदि पुण्योदय हो) तो सहायक हो सकती है, परन्तु जीवन में समता/शान्ति नहीं ला सकती। अनेक स्थानों पर तो यह व्यावसायिक समानता परस्पर में प्रतिस्पर्धा, एक-दूसरे को नीचा समझने का कारण भी बनते सुना है। जो व्यवसाय नजदीक लाने का कारण बना था वही दूर ले जाने, जीवन में परेशानियों का लाने वाला भी सिद्ध हुआ है।

अतः हम किसी भी प्रकार (वैवाहिक-मित्रता आदि) कोई भी संबंध बनायें उसमें आप सामाजिक/व्यावसायिक समानता देखें न देखें, परन्तु यदि संतान के जीवन में शान्ति चाहते हैं, अनुकूल/प्रतिकूल परिस्थितियों में समता चाहते हैं तो धार्मिक विचारों को भी मुख्यता दें।

न्याय-नीति के साथ देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान, स्वाध्याय का प्रेम संतान को हर परिस्थिति में मुस्कराते रहो की शिक्षा देगा। व्यवसाय में जेब/गला काट प्रतिस्पर्धा में सम्मिलित नहीं होने देगा, सफलता/असफलता में सहज रहने का विशेष सामर्थ्य देगा, जिसके कारण उनका जीवन तो मंगलमय होगा ही पर अभिभावक भी उनकी शान्ति सौरभ से महक उठेंगे।

एक प्रश्न जरूर हमारे मन में हो सकता है कि स्वाध्याय प्रेमियों को भी तो झगड़ा करते देखा जाता है, तब धर्म शान्ति का ही कारण है ऐसा कैसे कह सकते हैं?

मित्रो! प्रश्न सहज/सरल है। पर उत्तर भी सहज ही है। पूर्ण शान्ति गृहस्थ जीवन में संभव नहीं है। यदि यहाँ ही पूर्ण शान्ति मिल जाती तो गृहस्थी त्याग कर मुनिधर्म क्यों धारण करते? गृहस्थी में कषाय/आकुलता/राग-द्वेष के प्रसंग सभी को बनते ही हैं, परन्तु स्वाध्याय से हम जितना जल्दी उन प्रसंगों से स्वयं को सम्हालने में सक्षम हो जाते हैं वह धन-पद के कारण नहीं हो सकते। हम क्रोध-मान आदि उत्पन्न हो जाने पर भी कुछ ही समय में कर्मोदय/होनहार/क्रमबद्ध आदि के चिंतन द्वारा संतुलित होकर सहजता से ही क्षमा माँगकर या अन्य को क्षमा करके शान्ति पा सकते हैं। यही है '**शान्ति से जीवन जीने की कला**'। ❍

भावना

विविध शुभाशुभ भाव जीव यह, करता रहता है हर बार।
पाता है आकुलता निशदिन, दुखमय चतुर्गति संसार।।
शान्ति मानता परद्रव्यों से, विषयों की रहती आशा।
जैसे ही आतम रुचि लगती, मोह शत्रु सत्वर नाशा।।
नहीं विषय सुख रुचिकर लगते, जन्म जगत में लगे कलंक।
दश वृष धरकर मिले विपाशा, नष्ट होंय सब विधि के पंक।।

7

अतिक्रमण अधर्म है, प्रतिक्रमण धर्म

बाजार में जाओ या कॉलोनी में या खेत में, जिससे जिधर, जितना, जैसे बनता है अपनी निर्धारित सीमा से बाहर अतिक्रमण कर रहा है।

दुकान वाला पहले दुकान से बाहर 3–4 फुट तक सामान सजाता है, फिर सामान के लिए छाया करता है, सुरक्षा के लिए जाली लगाता है, रात को परेशानी से बचने को दरवाजा लगाता है, पता ही नहीं चलता कब दीवाल बन जाती है और वह जगह अपनी फिर उसके बाहर सामान सजने लगता है, बाइक पार्क करने लगते हैं और 60 फुट का रोड 30 फुट का रह जाता है, लोग परेशानियों का सामना करते रहते हैं।

घर के बाहर सड़क के किनारे गाड़ी पार्क करके, कुछ दिन में जाली लगाकर पक्का स्थान पार्किंग के लिए तैयार कर लेते हैं। पर्यावरण प्रेमी बनकर सरकारी जगह में वृक्षारोपण करते हैं और फिर उसे अपनी जगह मानकर उपयोग करने लगते हैं।

सास–बहू, पिता–पुत्र, अपने को होशियार, कर्तव्यनिष्ठ

मानकर पदाधिकारी एक-दूसरे के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण करना चाहता है और इस चाहत में ही आकुलता/क्लेश/राग-द्वेष करके तनाव/अशान्ति में रहता है।

घर/खेत यहाँ तक कि रेल में कुछ समय के लिए मिली सीट पर भी सामान रखकर या पैर फैलाकर जैसे बने वैसे अतिक्रमण करता है और प्रसन्न (काल्पनिक) होता है।

जब कभी सही मालिक या सरकार अतिक्रमण हटाने को कहता है, तब दुःखी होते हैं, रोते हैं, पैनल्टी देते हैं, तोड़-फोड़ होती है, हमारा बहुत नुकसान हो गया ऐसा मानते हैं। पर यह तब भी नहीं समझते/मानते कि गलती हमने की थी, हम ही अपनी मर्यादा का अतिक्रम करके पर की सीमा में गये थे, अतः आकुलता/परेशानी/अशान्ति हो रही है।

कुछ लोग उसी बाजार/कॉलोनी में ऐसे भी हैं, जिन्होंने अतिक्रमण नहीं किया, उनको तो कोई तोड़-फोड़ या कोर्ट की कार्यवाही का सामना नहीं करना पड़ा तथा कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने अतिक्रमण कर रखा था, परन्तु प्रथम सूचना मिलते ही प्रतिक्रमण कर लिया अर्थात् अपनी मर्यादा में लौट आये उनको भी अपमानित नहीं होना पड़ा, कोर्ट व वकीलों के चक्कर नहीं लगाने पड़े, वे आकुलता से बचकर शान्तिमय जीवन जी रहे हैं।

बस कुछ इसी तरह हम अनादि से अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप अपनी मर्यादा से बाहर निकल कर अतिक्रमण कर रहे हैं। सबसे पहले प्राप्त शरीर को ही यही मैं हूँ (मनुष्य/स्त्री-पुरुष,गोरा-काला) मानकर, शरीर को सुरक्षा देने वाले वस्त्र/मकान, सहयोग करने वाले माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि रिश्तों को अपना मानकर, मकान-दुकान, रुपया-सोना-चांदी-गाड़ी आदि का मालिक मानकर निरन्तर उनकी सुरक्षा/सुविधा/उपयोग के लिए आकुलता करते हैं। उनके लिए ही पापों/कषायों में लगकर कर्मों का बंधन करते हैं, चार गतियों में जन्म-मरण कर अनंत कष्ट पाते हैं, पर अतिक्रमण नहीं छोड़ते क्योंकि हम उसे दोष माने बिना अपना अधिकार ही समझते हैं।

हमारे सद्भाग्य से दिव्यध्वनि/जिनवाणी सुनने को मिली कि 'अतिक्रमण अधर्म है और प्रतिक्रमण धर्म है, शान्ति से जीवन जीने की कला है।' अतः अनादि से किये अतिक्रमण को छोड़कर प्रतिक्रमण करो।

जिन जीवों की भली होनहार है, वह तो इस दिव्य देशना को सुनकर प्राप्त शरीर के रहते हुए भी उससे अपना ममत्व तोड़ देते हैं और जब शरीर से ममत्व टूटा तब धन-पद-यश से ममत्व कैसे रह सकता है। क्योंकि कहा भी है -

तन से जिसका ऐक्य नहीं हो, सुत–तिय मित्रों से कैसे ?
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे ?

समस्त पर–पदार्थों के स्वामित्व को छोड़कर उनके कर्तापने को भी छोड़कर 'शुद्धातम है मेरा नाम, मात्र जानना मेरा काम' और 'होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ?' मानकर अपनी भूल स्वीकार कर वह प्रतिक्रमण कर लेते हैं अर्थात् अपने को मात्र जानने–देखनेवाला अकर्ता जीव मानते हैं तो आकुलता कम हो जाती है, कर्मबंधन रुक जाता है, शान्तिमय जीवन प्रारंभ हो जाता है और कालान्तर में चैतन्यस्वरूप में स्थिरता होने से मुनिदशा/अरहन्त/सिद्ध पद भी प्राप्त होते हैं तथा अनंतकाल तक शान्ति का ही उपभोग करते हैं। अतः हम स्वीकार करें 'अतिक्रमण अधर्म है, अशान्ति/आकुलता देने वाला है और प्रतिक्रमण (अपने स्वभाव में वापिसी) धर्म है, '**शान्ति से जीवन जीने की कला है**'। ○

निज मजबूती जानकर, पर की चिन्ता छोड़।
पर से रिश्ता तोड़कर, निज से नाता जोड़।।
जब तक पर से आस है, बना रहूँगा दास।
निज वैभव में रमण कर, छोड़ूँ पर की आस।।
जो निज में ही रम गया, जग से हुआ उदास।
मिटा भ्रमण संसार का, रहे सिद्धों के पास।।

8

नैतिकता है शान्ति का प्रथम सोपान

देश में सर्वाधिक ह्रास किसी क्षेत्र में हो रहा है तो वह है नैतिकता। बाह्य संसाधनों की वृद्धि हो रही है, खान-पान-परिधान का स्तर निरन्तर वर्धमान है। परन्तु रंग-बिरंगे परिधानों, आलीशान बंगलों, महँगी गाड़ियों में बैठा मानव नीति विरुद्ध आचरण करने में ही अपनी बुद्धि/चतुराई का उपयोग कर रहा है।

लौकिक नीति पर चलने वाले व्यक्ति को मूर्ख मानकर उसका उपहास उड़ाया जाता है और अनैतिकों का अनैतिकों द्वारा सार्वजनिक सम्मान समारोह आयोजित किया जा रहा है।

लौकिक अनीति पर चलने वाला आत्मिक शान्ति की चर्चा सुनने से भी दूर है और लोकोत्तर अनीति वाला आत्मिक शान्ति से दूर है, अतः यदि हम आत्मिक शान्ति/आनंद पाना चाहते हैं तो सबसे पहले प्रयास हो कि हमारा जीवन नैतिक हो। नैतिकता को हम आत्मिक शान्ति का प्रथम सोपान भी कह सकते हैं।

हम अपने कर्तव्यों का स्मरण किये बिना मात्र अधिकार

पाना चाहते हैं, यह अनैतिक है। 'अधिकार कर्तव्य की झोली में ही प्राप्त होते हैं।' यदि हम झोली ही नहीं पकड़ना चाहेंगे तो अधिकार कैसे प्राप्त हो सकेंगे।

अपने माता-पिता, सास-ससुर की सेवा किये बिना, मेरी सेवा करने वाले बेटे-बहू हों की चाहत अनैतिक है।

संस्था/समाज/सरकार द्वारा प्रदत्त कर्तव्यों/समय का पालन नहीं करना अनैतिक है।

किसी को भी दिये गये वचन का पालन नहीं करना, स्वार्थ सिद्धि के लिए अन्य के हितों का ध्यान नहीं रखना, अपने लाभ के लिए देश/समाज का अहित करना अनैतिक है।

जिस संपत्ति पर अपना अधिकार नहीं है, पर उसकी सुरक्षा करने का कार्य प्राप्त हुआ हो, तब उस संपत्ति पर अपना अधिकार मानकर उसका उपयोग करना, सार्वजनिक/पारमार्थिक संपदा का पारिवारिक संपत्ति की तरह उपयोग करना, दान से प्राप्त संसाधनों का व्यक्तिगत हित में उपयोग करना अनैतिक है।

जो अपना नहीं है, अपने लिए नहीं है, उसे किसी भी कारण से अपना व अपने लिए मानना, अन्य द्वारा किये कार्य को अपना किया मानना अनैतिक है।

ऐसा अनैतिकता का आचरण जिसका हो वह सदैव लौकिक स्वार्थसिद्धि में लगा रहता है। कदाचित् पुण्योदय से लौकिक स्वार्थ/कार्य सिद्धि हो भी जाये पर लोकोत्तर कार्य सिद्धि अर्थात् आत्मिक शान्ति से दूर ही रहेगा।

सच में तो पर को अपना मानना अर्थात् पौद्गलिक शरीर, परिवार, धन–दौलत को अपना मानना, इनके काम को अपने द्वारा किये मानना जैसे कि मैं ही व्यापार/समाज/परिवार चलाता हूँ। मैंने ही बेटा–बेटी बड़े किये हैं, पढ़ाया–लिखाया है, मंदिर मैंने बनवाया है, मैं ही संस्थान संचालक हूँ इत्यादि मान्यता पारमार्थिक नीति विरुद्ध होने से लोकोत्तर अनैतिक है।

'हमारे जीवन–दर्शन का आधार पवित्रता हो।' हम जितने उत्साह से कर्ज लेते हैं, उससे अधिक उत्साह से कर्ज चुकाने की आदत बनायें। अच्छा कार्य करने पर पुरस्कार पाने को हम जिस तरह उत्साहित/लालायित होते हैं, वैसे ही दोष होने पर दण्ड पाने के लिए भी उत्साहित हों, पूर्व में पाप हम करके आये हैं और उनका फल मिलने पर अन्य को दोष देना अनैतिक तथा अपने दोष मानकर निर्दोष होने की भावना व प्रयास नैतिक है।

अनंत पुद्गलों से रचित शरीर को अपना मानना अनैतिक

तथा अपने ज्ञानस्वभाव से उसे भिन्न/स्वतंत्र मानना नैतिक है। पुण्य-पापरूप संसार के कारणों में से पाप को संसार व पुण्य को मोक्ष का कारण मानना अनैतिक तथा पुण्य-पाप दोनों को संसार का कारण मानकर वीतरागता को हितकर/मोक्ष का कारण मानना लोकोत्तर नैतिकता है, प्रत्येक द्रव्य अनंत गुणात्मक है, उसके होते हुए कार्य का कर्ता बन अनैतिक तथा अपने को कर्ता नहीं ज्ञाता मात्र मानना नैतिक है, यही मान्यता निर्दोष होने से, '**शान्ति से जीवन जीने की कला है**'। ❍

शिक्षा

बात ऐसी ही करो तुम, कोई कहे ना चुप रहो।
बैठो सदा ऐसी जगह, कोई कहे ना उठ रहो।।
भोजन करो उतना ही बंधु, पेट में ना दर्द हो।
काम ऐसे ही करो तुम, नहीं सिर पर कर्ज हो।।
देखो सदा उस दृष्टि से, जिससे ना कोई क्लेश हो।
सुनना सदा ही वह वचन, जिनमें न राग अरु द्वेष हो।।
मित्रता उससे करो जो, हर समय में साथ दे।
धर्म पथ पर ले चले जो, हाथ में तव हाथ ले।।
शत्रु से भी वह कहो न, याद आये शर्म हो।
न्याय-नीति-धर्म से, पूरित सदा ही कर्म हो।।
मन-वचन अरु कर्म से, सुखमय सदा वर्तन रहे।
मात-पिता अरु गुरु गुणों का, चित्त में सुमिरण रहे।।
पद-प्रतिष्ठा-यश मिले, स्नेह पाये वह सदा।
निष्पक्ष अरु निरपेक्ष रह, जीता जो जीवन सर्वदा।।

९

सामंजस्य से ही लौकिक जीवन में शान्ति संभव है

आज सर्वत्र सम्मिलित परिवार टूट रहे हैं। क्यों ? क्योंकि आपस में हमारे विचार नहीं मिलते। जिनसे विचार न मिलें उनसे अलग हो जाओ/दूर हो जाओ तो शान्तिमय जीवन हो जायेगा।

बस इसी मिथ्या सोच के कारण आज के इस भौतिकवादी युग में पति-पत्नी ही दादा-दादी, चाचा-चाची, माता-पिता से अलग होकर स्वतंत्रता और शान्ति की चाहत में रह रहे हैं। पर शान्ति कहाँ है दिख ही नहीं रही ?

अब तो पति-पत्नी ही साथ रह रहे थे। लग रहा था हमारे विचार मिल रहे हैं अतः हम तो साथ में रह लेंगे और घर को स्वर्ग बनाकर हम स्वर्गवासी हो जायेंगे।

पर यह क्या ? पता चला अब तो पति-पत्नी के बीच भी मतभेद हैं, इनके भी विचार नहीं मिल रहे। मात्र दो ही रह गये थे शान्ति के लिए परन्तु शान्ति तो दूर खड़ी चिढ़ा रही है।

अब जब पति-पत्नी के भी विचार नहीं मिल रहे हैं तो

वह भी शान्ति से जीने के लिए अलग हो रहे हैं या एक ही छत के नीचे भारत–पाकिस्तान बनकर रह रहे हैं।

अब किससे दूर हों? किसको छोड़ें कि शान्ति मिल जाये?

मित्रो? परिवार में शान्ति अलग–अलग होने से नहीं अपितु वैचारिक सामंजस्य से आती है।

अपने हाथ की पाँचों उंगलियाँ क्या बराबर लंबाई या ताकत वाली हैं? नहीं। परन्तु वे साथ रहकर झगड़ती नहीं हैं और स्वतंत्र रहकर भी अवसर आने पर एक संगठित मुक्का बनकर खड़ी हो जाती हैं और अन्य को परास्त कर देती हैं, यही सामंजस्य है।

छह प्रकार के अनंत द्रव्य अनादि काल से जहाँ निवास कर रहे हैं, उसे विश्व कहते हैं। इनमें आकार में छोटे भी हैं (परमाणु/कालाणु) बड़े भी हैं (आकाश), संख्या में अकेले भी हैं (धर्म–अधर्म–आकाश) और अनंत भी हैं (पुद्गल–जीव) स्वभाव भी परस्पर विरोधी हैं जैसे – जीव चैतन्यमय, पुद्गल जड़मय, धर्मद्रव्य चलने में तो अधर्म रुकने में निमित्त।

इतना विरोधाभास होते हुए भी किसी ने किसी को विश्व से बाहर नहीं किया, न ही आत्महत्या की, न ही अपना

स्वरूप छोड़कर अन्य रूप हुए और अनादिकाल से अनंतकाल तक इस सुन्दर विश्व परिवार के सभी सदस्य रहेंगे।

मित्रो ! परिवार में या इस लोक/दुनिया में आपको शान्ति से रहना है तो सदैव आपकी पसन्द ही चले, आपकी बात ही सुनी जाये, आप ही सबसे बड़े और समझदार माने जायें, आपकी इच्छा की ही पूर्ति की जाये ऐसा नहीं हो सकता। परिवार/समाज/ लोक में शान्ति से रहने के लिए आप सामंजस्य बैठाकर ही रह सकते हैं।

यदि आप अन्य की पसन्द का ध्यान नहीं रख सकते, अन्य की बात सुन नहीं सकते, किसी को साथ लेकर नहीं चल सकते, अन्य का सम्मान नहीं कर सकते हैं, तब तो फिर परिवार के मध्य रह आंशिक शान्ति का मार्ग छोड़कर निर्ग्रन्थों के पथ पर चलकर पूर्ण स्वतंत्रता को प्राप्त कर अनंतकाल तक के लिए शान्ति प्राप्त करने के मार्ग पर आपको चलना चाहिए।

परन्तु यदि आपको लगता है कि अभी वीतरागी निर्ग्रंथ के पंथ चलना संभव नहीं है और एक स्वस्थ परिवार/समाज/ संस्थान के साथ रहकर ही लौकिक/लोकोत्तर शान्ति के पथ की साधना/आराधना करना है तो सदैव सामंजस्य के साथ रहकर ही शान्तिमय जीवन जिया जा सकता है। ❍

10

बराबरी किससे ?

नगर के किसी मिलावट करने वाले व्यापारी, रिश्वतखोर अधिकारी, कुख्यात चोर-झूठे-तश्कर, विद्यालय-महा-विद्यालय के उद्दण्ड छात्र को आदर्श बनाकर किसी को व्यापार करने, अधिकारी बनने या अपनी संतान को उद्दण्ड छात्र बनने के लिए प्रेरित किया जाये तो प्रत्येक समझदार का जवाब होगा -

"नहीं भाई ! हमें व्यापार तो करना है, परन्तु उनके जैसा मिलावट का काम करके या रिश्वत लेकर पैसा नहीं कमाना, न ही अपना नाम खराब करना है। मेरे भाग्य में जितना होगा, उतना ही मिलेगा, पर गलत काम नहीं करना।

उनका क्या है वह तो मिलावट/तस्करी या झूठ बोलकर पैसा कमायेंगे, पकड़े जायेंगे तो जेल चले जायेंगे, फिर कमाये हुए पैसे खर्च करके जेल से छूटकर घर आ जायेंगे पर हम जानते हैं कि भले ही ये घर आ जायें, पर जो सम्मान चला गया वह फिर नहीं आयेगा।

हमें तो भैया अपना सम्मान प्रिय है। हमें जेल जाकर और इज्जत बिगाड़ कर उनकी बराबरी नहीं करना है।''

विद्यार्थी कहता है कि ''अंकल आप किस लड़के को आदर्श बनाने की बात कर रहे हैं। वह महाविद्यालय पढ़ने नहीं, लड़ने आता है। वह तो तीन साल से एक ही कक्षा में है, उसे कुछ अंतर ही नहीं पड़ता वह तो 'तफरी' करने कॉलेज आता है। कभी भी ठुकता-पिटता रहता है, कई बार कॉलेज से निकाला जा चुका है। मैं उसकी बराबरी नहीं करना चाहता। वह तो गुण्डागर्दी करके कभी बाजार में तो कभी जेल में डण्डे खाकर जी लेगा पर मुझे तो ईमानदारी से पढ़कर देशहित में कुछ काम करना है, शान्ति का जीवन जीना है, ऐसे धूर्त मेरे आदर्श नहीं हैं, जिनकी बराबरी मैं करूँ।''

मित्रो! आपने सही कहा है कि जिन्हें जेल जाना है, सस्पेण्ड होना है, बेइज्जत होना है, उनकी बराबरी हम क्यों करें? हमें तो सम्मानपूर्वक जीवन जीना है, शान्ति से जीवन जीना है।

मित्रो! बस इसी तरह विचार कीजियेगा कि जिनको नरक-निगोद में जाकर अनंत काल तक दुःखी होना है, बेइज्जत होना है, जन्म-मरण के कष्ट भोगना है, बीमार होना

है, तिर्यंचों के कहे न जा सकने वाले वध–बंधन आदि के कष्ट सहन करना है, वह भले ही रात्रि भोजन करें, जमीकन्द–पिज्जा–बर्गर खायें, हिंसा आदि पाप करें, धर्म विरुद्ध आचरण करें, अन्याय–अनीति से धन कमाकर भोग सामग्री एकत्र करें; वे भोगी और उनके भोग हमें बराबरी करने लायक नहीं हैं।

हमें तो सिद्धों के पास चलना है, आकुलता से बचना है, नरक–निगोद के दुःख सहन नहीं करना है, परम शान्तिमय जीवन जीना है, अतः असंयमी, असदाचारी, अभक्ष्य का सेवन करनेवाले, दिन–रात परिग्रह एकत्र करने की भावना वाले, होटलों में पार्टियों में 'एन्ज्वाय' करनेवाले, हमारे आदर्श नहीं हैं, उनकी बराबरी मत करो, उनकी देखा–देखी मत करो।

हमारे आदर्श तो संयमित जीवन जीनेवाले, सुख–दुःख, यश–अपयश, लाभ–हानि, मान–अपमान में समता भाव धारण करनेवाले मुनिराज, आर्यिका मातायें, तत्त्वज्ञान में लगे हुए साधर्मी हैं, हम उनके संतुलित और संयमित जीवन से प्रेरणा लें क्योंकि 'हमें सुखी होना है, शान्तिमय जीवन जीना है।' यही विचार '**शान्ति से जीवन जीने की कला है**'।

11

अनुशासन बंधन नहीं, सुरक्षा है

समझ तो सभी को आ जाती है, परन्तु समझदार व भाग्य शैली वे हैं, जिन्हें समय पर समझ में आती है।

अधिकांश तो उम्र बढ़ने पर भी बाल बुद्धि ही बनी रहती है, जिसके कारण जो लाभदायक है, वह हानिकारक व जो हानिकारक है, वह लाभदायक मानकर विपरीत आचरण करके प्रमुदित होते हैं, जो कि दीर्घकालीन दुःख का कारण होता है।

हमारे सुखद/सुरक्षित जीवन के लिए ही अनुशासन होता है, परन्तु हमारा बालमन अनुशासन को बंधन मानकर, उसको तोड़ने में ही आनंदित होता है, जबकि यह परम सत्य है कि 'अनुशासन बंधन नहीं सुरक्षा है।'

अनुशासन अर्थात् प्रत्येक व्यवस्था/कार्य को व्यवस्थित संचालित करने हेतु बनाये गये नियम। शासन अर्थात् नियम/आदेश/उपदेश/ आज्ञा के अनुसार चलना ही अनुशासन है। यह अनुशासन प्राकृतिक/सामाजिक/पारिवारिक/प्रशासनिक किसी भी प्रकार से हो सकता है।

जिस तरह हम जिस देश में जायेंगे तो वहाँ के नियमों के अनुसार ही हमें रहना/चलना होगा, उसीप्रकार हम जिस परिवेश में अर्थात् परिवार/विद्यालय/समाज/देश/धर्म के क्षेत्र में होंगे, वहाँ का अपना शासन होगा। यदि हम उस परिवेश में रहना चाहते हैं तो हमें वहाँ के शासन के अनुसार ही चलना होगा, तभी हम सुख-शान्तिमय जीवन जी सकते हैं। उस अनुशासन के पालन में ही हमारी सुरक्षा व सौन्दर्य है।

घड़ी के तीनों कांटे अपनी-अपनी रफ्तार से चलते हैं, कभी मर्यादा नहीं तोड़ते हैं, इसीलिये हम अपनी कलाई पर बांधते हैं, दीवाल पर लगाते हैं, उसके अनुसार हम अपनी दिनचर्या संचालित करते हैं। यदि वह अनुशासन तोड़ दें, वे कांटे मनमर्जी से चलने लग जायें तो हजारों रुपये वाली घड़ी अविश्वसनीय हो जाती है, घड़ी सुधारक के पास भेजी जाती है और फिर भी अनुशासन में न आये तो कचरा पात्र में ही स्थान पाती है।

विचार करें कि क्या प्रकृति कभी अपना अनुशासन तोड़ती है और यदि दैवात् कभी प्रकृति अनुशासन मुक्त होकर चली है तो प्रलय ही आया है शान्ति नहीं।

कभी गाड़ी का ब्रेक, एक्सीलेटर का या एक्सीलेटर, ब्रेक का काम करने लगे तो क्या होगा? गाड़ी का पहिया एक

निश्चित धुरी पर बंधकर ही चलता है तभी गाड़ी मंजिल पर पहुँचती है, यदि पहिया मुक्त होकर चले तो गाड़ी और हम कहाँ होंगे ? कल्पना से ही काँप उठेंगे।

शरीर का कोई भी अंग अनुशासन तोड़कर नहीं चलता, यदि आँख सुनने और कान चलने लगें तो सोचो क्या होगा ?

परिवार और समाज में जो कलह/क्लेश दिख रहा है, वह अनुशासन को बंधन मानकर जब तोड़कर चलना चाहते हैं तभी होते हैं। परिवार में पिता-पुत्र, सास-बहू, पति-पत्नी सभी का अनुशासन अर्थात् नियम/कायदे-कानून होते हैं, जो सच में पारस्परिक सहयोग व सुरक्षा के लिए होते हैं।

छात्रावास/विद्यालयों का अनुशासन छात्रों की सुविधा/ सुरक्षा के लिए है, पर छात्र अनुशासन बंधन मानकर तोड़कर चलते हैं, तब अपमानित होते हैं, निष्कासित होते हैं, गुरुजन के अप्रिय होते हैं।

सड़क पर जितनी दुर्घटनायें होती हैं, वे सब अनुशासन तोड़ने के कारण होती हैं। कारागार में जितने बंदी हैं, वे सब किसी न किसी प्रकार के अनुशासन को तोड़ कर ही हैं।

अस्पताल में जितने मरीज हैं वह भी किसी न किसी प्रकार से भोजन आदि का अनुशासन तोड़कर ही हैं।

और चार गति रूप संसार में जितने भी जीव दुःखी हैं, आकुलित हैं, वे सब भी अपने अकर्ता स्वरूप को भूलकर पर को अपना बनाने/ मानने और धर्म विरुद्ध आचरण करके ही हैं।

सच में जिसप्रकार मकान की दीवाल या दरवाजे होना, रेल का पटरी पर ही चलना, सड़क पर बांयी ओर चलना, खेत की बाड़ बंधन नहीं सुरक्षा है, उसी प्रकार परिवार के मध्य रहकर पिताजी या सास-ससुर की या विद्यालय में अध्यापक की, धर्म मार्ग में जिनवाणी की बात मानना, उनके कहे अनुसार चलना, मना करने पर वह काम नहीं करना, समय पर उठना-बैठना, बड़ों का सम्मान करना, अपना काम समय पर, स्वयं करना, अन्य नियमानुसार चलना बंधन नहीं है यह हमारी सुरक्षा है, यह बात समय पर समझ में आ जाये तो हम शान्तिमय जीवन जी सकते हैं और कहा जा सकता है कि हमने 'अ' से 'अनुशासन' का पाठ पढ़ा है, अतः हम बाल बुद्धि नहीं समझदार हैं। ❍

अपरिग्रह का उपदेश दें, परिग्रह की है आस।
विषय-त्याग की बात कर, हैं विषयों के दास।।
अजर-अमर है आत्मा, नहिं है उसका नाम।
भाषण में यह सब कहें, पर है नाम से काम।।

12

आदर दो–आदर लो

आज परिवार/समाज/विद्यालय में सर्वत्र ही यह शिकायत बढ़ती जा रही है कि आज का युवा वर्ग बड़ों/अध्यापकों का सम्मान नहीं करता। बेटे माता–पिता, दादा–दादी की बात नहीं मानते, बहुयें सास–ससुर की बात ही नहीं सुनते, तब सेवा करना तो बहुत दूर है। और जब परस्पर आदरभाव नहीं होता तो चित्त में अशान्ति होना स्वाभाविक है।

मित्रो! जीवन में उन्नति व शान्ति के लिए बड़ों का आदर/सम्मान करना अत्यावश्यक है। जो अपने माता–पिता, भाई–बहिन, सास–ससुर, अध्यापकों का जो कि प्रत्यक्ष में हमारे उपकारक हैं, उनका उपकार नहीं मानता, उनका सम्मान नहीं करता, तब फिर वह अन्य का उपकार क्या मानेगा? वह तो कृतघ्नी है।

हमारी आदर्श संस्कृति में कृतघ्नी को महापापी कहा गया है। कृतघ्नी के आयु/यश क्षीण हो जाते हैं। कृतघ्नी के सहायक नहीं होते, यहाँ तक कि परिजन भी स्नेह नहीं करते, उसे स्वार्थी/अहंकारी मानकर मित्र भी किनारा कर लेते हैं अतः

हमें अपने से बड़ों/उपकारकों का आदर/सेवा/सम्मान बहुत ही विनम्रतापूर्वक करना चाहिये।

माता-पिता हमें इस बहुमूल्य मनुष्य भव को प्रदान करने व जिस समय हम पूर्णतः असहाय/अनभिज्ञ/नादान थे, ऐसी उम्र में वात्सल्य पूर्वक लालन-पालन करने, स्वस्थ रहने में निमित्त बने, पढ़ने व आगे बढ़ने में तन-मन-धन लगाया उनका आदर न करके उन्हें अशिक्षित/पिछड़ा/नासमझ/स्वतंत्रता में बाधक मानकर उपेक्षित करना कृतघ्नता है।

जिन अध्यापकों ने हमें पढ़ना-लिखना सिखाया, सन्मार्ग दिखलाया उनको उन्होंने अपना कर्तव्य निभाया है, हमारे ऊपर क्या उपकार किया है, इस प्रकार की भावना होना, उनका आदर नहीं करना कृतघ्नता है। इसके फल में हमें ज्ञानावरण कर्म का आस्रव-बंध होगा, जिसके कारण हमारे ज्ञान की हीनता होगी।

जो बहुयें सास-ससुर का आदर नहीं करती हैं मात्र पति के प्रेम (वासना) में पागल होकर पति को अलग लेकर भाग जाती हैं, वे यह भूल जाती हैं कि उनको जो सुन्दर/स्वस्थ/सुशिक्षित/सुयोग्य जीवन साथी मिला है, उनके मूल कारण तो यह माता-पिता (सास-ससुर) ही हैं। इतने सुन्दर जीवन

साथीरूप उपहार देने वाले के प्रति तो हार्दिक आदरभाव जागृत होना चाहिये।

इसी तरह किसी भी प्रकार से अर्थात् आयु/बुद्धि/व्रत/पद/रिश्ते में जो बड़े हों जो किसी भी प्रकार से हमारी पारिवारिक/व्यावसायिक उन्नति में सहयोगी हुए हों, उनके प्रति भी सदैव आदर भाव होना चाहिये।

आदरभाव में सम्मान सूचक संबोधन, चरण स्पर्श, विनम्रता पूर्वक उनकी बात सुनना, उच्चासन देना, सहयोग करना, यथायोग्य सेवा करना, आज्ञा–आदेश का पालन करना, यदि कोई बात अस्वीकार्य है तो भी उसमें उद्दंडता नहीं विनम्रता झलके इसप्रकार का व्यवहार करना आदि सम्मिलित हैं।

यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य है कि बड़ों को भी अपने बेटे–बहू–शिष्य का स्नेह देकर, उनकी बात को भी प्रेम से सुनकर, उनके योग्य स्वतंत्रता देकर, उन्हें सर्वथा नालायक/अयोग्य/बच्चा/नासमझ न समझ कर, उनकी उम्र के अनुरूप उनकी भावनाओं को समझकर, न्यायसंगत उनकी इच्छाओं को उत्साहपूर्वक पूर्ण कर आदर करना चाहिये क्योंकि आप आदर देंगे, तो ही आदर मिलेगा।

इस संबंध में एक छोटा सा उदाहरण सुना था कि यदि आप किसी को आवाज दोगे – 'चौबे।'

तो वह जबाब देगा – 'हाँ वे।'

और यदि आप कहोगे – 'चौबेजी'

तो वह जवाब देगा – 'हाँ जी।'

निष्कर्ष यही है कि आदर दोगे तो ही आदर मिलेगा।

लौकिक दृष्टि से प्रत्यक्ष उपकारक माता-पिता, सास-ससुर, भाई-बहिन, अध्यापक हैं, उनके प्रति जिसके हृदय में आदर भाव होगा वही पारलौकिक/परोक्ष उपकारक देव-शास्त्र-गुरु के प्रति आदरभाव रख सकता है। यह 'आदरभाव/गुणानुराग ही भक्ति है, जो परम्परा से मुक्ति में निमित्त बनती है' अतः 'हमें निज शुद्धात्मा का स्वरूप बतलाने वाले, अनंत दुखों का अभाव कर सच्चे सुख का मार्ग बतलानेवाले परम उपकारक देव-शास्त्र-गुरु एवं प्रत्यक्ष में धर्म शिक्षा देने वाले शिक्षा गुरु के प्रति हार्दिक बहुमान/आदरभाव होना चाहिये।'

कहा भी है –

'विनयेन शोभते विद्या'।

'विनय बिना विद्या नहीं।' और

विनय सम्पन्नता नामक सोलहकारण भावनाओं में एक भावना भी है। सच्चे देव–शास्त्र–गुरु का स्वरूप समझ कर उन जैसा बनने की भावना के साथ उनके प्रति अनंत उपकार भावना/अहोभावरूप विनम्रता तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण है।

'आदरभाव, विनम्रता/सरलता आये बिना नहीं हो सकता और जिसके हृदय में कोमलता/सरलता है, उसका जीवन ही शान्तिमय जीवन हो सकता है।'

अतः शान्तिमय लौकिक/पारलौकिक जीवन जीने के लिए 'आ' से 'आदर' का पाठ सीखना अत्यावश्यक है। ❍

आओ चलो कुछ करते हैं

आओ चलो कुछ करते हैं – कुछ कहते, कुछ सुनते हैं।।
मौन साध जो बैठे हैं, अहंभाव में ऐंठे हैं,
प्रेम भाव अरु क्षमाभाव से, शीतल सुरभित मृदु वचनों से,
कोमल चित कुछ करते हैं।।
मोह तिमिर में भ्रमित हो रहे, 'तूं परमातम' कौन कहे ?
दूर सदा हैं – देव–गुरु से, सात–तत्त्व अरु छह द्रव्यों से,
उनको जिनवच कहते हैं।।
भक्ष्य–अभक्ष्य का ज्ञान नहीं है – पूज्य–अपूज्य का भान नहीं है,
दुराचार अरु कुलाचार में, उलझ रहे हैं भ्रष्टाचार में,
उनसे न्याय–नीति कुछ कहते हैं।।

13

शान्ति की सहेली - समता

गार्हस्थ्य जीवन में अनेक प्रकार की अनुकूलता होते हुए भी प्रतिकूलतायें आती ही हैं क्योंकि वर्तमान पंचमकाल में निरन्तर पुण्योदय किसी के नहीं रहता। जिस प्रकार दिन के बाद रात आती है, उसी प्रकार लाभ-हानि, यश-अपयश, मान-अपमान, रोग-नीरोग, संयोग-वियोग होते ही रहते हैं। बस इतना अन्तर दिखाई देता है किसी की रात लम्बी है तो किसी के दिन।

दिन अर्थात् पुण्योदय में हम अहंकार के पर्वत पर चढ़ जाते हैं, जिससे सभी रिश्ते/प्राणी हमें बौने नजर आते हैं। हम अपने अतिरिक्त किसी को अपने पास आने नहीं देना चाहते, किसी को कुछ नहीं समझते, किसी की नहीं सुनते, सबको अपने अनुसार चलाना चाहते हैं, इन भावनाओं/इच्छाओं के फल में प्रति क्षण ईर्ष्या/अहंकार की आग में जलते हैं, कषाय परिणाम करके वर्तमान में आकुलित होते हैं और पाप बंधन करके दुःखमय भविष्य की तैयारियाँ करते हैं।

और जिनके जीवन में रात्रि अर्थात् पापोदय का समय

आता है, जिसके कारण शरीर में बीमारियाँ, बेरोजगारी, व्यापार में घाटा, धन का अपहरण, समाज में अपमान, परिवार द्वारा तिरस्कृत होना, चाहने व परिश्रम करने पर भी असफलता मिलना, माता-पिता, भाई बहिन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि का वियोग होने जैसे कार्य होते हैं, जिनके कारण निरन्तर शोक, दुःख होता है। सुख की चाहत में किये गये प्रयास दुःख के ही कारण सिद्ध होते हैं।

पापोदय से जो भी प्रतिकूलतायें आती हैं, अज्ञानता से वह उनका कारण अन्य को मानकर उनको ही दूर करना चाहते हैं, उनको ही सुधारना चाहते हैं, और वह व्यक्ति/पदार्थ जब अपनी इच्छा के अनुकूल परिणमित नहीं होते, तब दुखी होकर अन्य को दुखित करता है, स्वयं दुखी जीवन जीता है।

जीवन में आयी हुई इन अनुकूलताओं/प्रतिकूलताओं को देखकर यह चिंतन होना चाहिये कि यह सब कर्मोदयजन्य अवस्थायें हैं, इनको लाने-ले जाने वाला बाहर का कोई भी व्यक्ति/पदार्थ नहीं है, तब फिर किस पर राग और किस पर द्वेष ? मैं व्यर्थ ही कषाय भाव करके दुखी हो रहा हूँ। यदि मैं समता धारण कर इन परिस्थितियों का ज्ञाता रहूँ तो न क्रोध होगा न ही मान। जब कषाय भाव नहीं होंगे, तब वर्तमान में

आकुलित नहीं होंगे, न ही पाप का बंधन कर भविष्य में दु:ख होगा। जैसा कि कहा भी है -

''जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें यह झूठी मन की वृत्ति है।।''

अत: हर परिस्थिति में मेरी शान्ति की सहेली समता ही है, ऐसी सच्ची समझ ही - '**शान्ति से जीवन जीने की कला है**'। ❍

आलोचना

बस दूसरों के दोष लखना, ना आलोचना का अर्थ है।
गुण-दोष को जाने बिना, आलोचना बस व्यर्थ है।।
आलोचना वे जन करें, जो नहीं कुछ भी हित करें।
स्व-पर हित जो कुछ करें, आलोचना से कब डरें।।
धन्य आलोचक सभी, निज अहित कर परहित करें।
औषधि सम कटुवचन कह, दोष ज्वर को परिहरें।।
सत्य आलोचक का मिलना, नियम से सद्भाग्य है।
पर किसी का आलोचक बनूँ, तो यह मेरा दुर्भाग्य है।।
पर दोष दर्शन अरु कथन, नहीं जीव को हितकार है।
निज दोष दर्शन अरु श्रवण कर, तजना ही सुखकार है।।
हम स्वयं के दोष देखें, निर्दोष होने के लिए।
पर के भी यदि दोष देखें, तो निर्दोष करने के लिए।।
मैं तजूँ निज दोष को, करके क्षमा की याचना।
मम दोष कह निर्मल करो, है सभी से प्रार्थना।।

(14)

संतान को भेदज्ञान के संस्कार दो

आज लौकिक शिक्षा और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अमीर/गरीब हर व्यक्ति सावधानी रखने लगा है, और अपनी आय का बहुत बड़ा हिस्सा इन दो मदों पर नियमितरूप से खर्च कर रहा है और आवश्यकता होने पर और कुछ भी करने को तैयार हो जाता है।

लौकिक शिक्षा की बढ़ती प्रतिस्पर्धा में अभिभावकों ने अपनी संतान को घुड़दौड़ का घोड़ा बनाकर दौड़ में शामिल कर दिया है।

अधिकांश अभिभावक नहीं जानते कि संतान की योग्यता/रुचि क्या है? केवल स्वयं द्वारा निर्धारित लक्ष्य को पुण्योदय से प्राप्त धन के द्वारा मात्र अच्छे (ऊँचे नामवाले) विद्यालय में प्रवेश दिलाकर प्राप्त करना/कराना चाहते हैं। यदि पुण्योदय /संयोग से लक्ष्य प्राप्त हो जाये तो अहंकार के पर्वत पर चढ़ जाते हैं और दुर्भाग्य से लक्ष्य प्राप्त न हो तो अभिभावक व संतान अवसाद (डिप्रेशन) के शिकार हो जाते हैं।

योग्य पद या परीक्षा में प्रतिशत नहीं मिला तो लगता है,

मनुष्य पर्याय ही बेकार चली गई। मानो मनुष्य जन्म कुछ प्रतिशत अंक पाने और शराबियों/भ्रष्टाचारियों की गुलामी करने को ही मिला था। परिवार/समाज/धर्म का तो जीवन में जैसे कोई स्थान/योगदान ही नहीं रह गया है।

आजकल अखबारों और टेलीविजन पर स्कूलों के छोटे-छोटे बच्चों द्वारा किये जा रहे जिन दुष्कृत्यों (हिंसा/बलात्कार/चोरी/ विधर्मी विवाह) के समाचार आ रहे हैं (यह तो कुछ नमूने मात्र हैं, स्थिति तो और अधिक बिगड़ रही है) वह समाजचिंतकों के लिए चिंतन ही नहीं चिंता का विषय बनता जा रहा है। हम मूकदर्शक की भाँति देख रहे हैं, क्योंकि अभी हमारे घर में आग नहीं लगी है। पर बंधु! सच तो यह भी हो सकता है कि आग आपके घर भी लग चुकी हो, परन्तु कंबल ओढ़े हुए होने से दिख न रही हो या यदि सौभाग्य से अपने घर में नहीं लगी है तो भविष्य में भी न लगे इसके लिए 'फायर प्रूफ' व्यवस्था कर लीजिये।

मित्रो! संतान को आप पुरुषार्थ की भले ही प्रेरणा दें, उन्हें आगे बढ़ने को प्रेरित करें परन्तु अति महत्त्वाकांक्षी न बनायें। उन्हें बचपन से ही सिखायें कि "मिलता उतना ही है, जितना भाग्य में होता है।" सुभाषित है – 'समय से पहले और भाग्य से अधिक कभी, किसी को कुछ नहीं मिलता।' यह अच्छी

तरह समझें/समझायें।

जितना भी मिलता है, उतने में ही प्रसन्नतापूर्वक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है।

'आवश्यकता सबकी पूर्ति हो सकती है, परन्तु इच्छा/ शौक कभी पूरे नहीं होते।'

'दिखावट/बनावट/सजावट की प्रतियोगिता में संतान को शामिल न करें।'

'अपनी संतान की हर किसी से तुलना न करें।'

'सबकी अपनी अलग योग्यता और रुचि होती है। बच्चों को अपनी रुचि व योग्यता से कार्य करने दें।' प्राथमिक स्तर पर उचित मार्गदर्शन करें व उसकी रुचि पहचानने की कोशिश करें।

संतान को 'भेदज्ञान' के संस्कार गहरे दें –

1. 'अपने-पराये' के –

अपने माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नानी आदि के प्रति कृतज्ञ हो। जिस किसी ने टॉफी दी वह अपना व डाँटे तो पराया ऐसा नहीं समझे। '**जो हित के मार्ग पर ले जाये वही अपना है।**' शेष सब पराये हैं, दूरी रखने योग्य हैं।

2. 'अच्छे-बुरे' के -

मात्र क्षणिक आनंद के लिए विद्यालय से भागना, हर किसी से दोस्ती करना, कुछ भी किसी से लेकर खाने-पीने में साथ देने वाले अच्छे नहीं हैं, उनसे बचकर रहो। जो हमें परिवार के नजदीक रखे, स्वयं को व अन्य को कष्टकर न हो ऐसे कार्य करे/करावे, अन्याय व अनीति न हो वही अच्छा है। शेष बुरे हैं - ऐसा जानकर उनसे मित्रता नहीं करना।

3. 'भक्ष्य-अभक्ष्य' -

जो अहिंसक हो, स्वास्थ्य के अनुकूल हो, प्रमाद पोषक न हो, सड़े-गले पदार्थ से न बना हो, वह भक्ष्य है अन्य अभक्ष्य। मात्र दिखने में और स्वाद में जो वस्तु अच्छी दिखे वही खाने लग जावे - ऐसा नहीं हो।'

4. 'पूज्य-अपूज्य' -

'चमत्कारों के पीछे न जावे। संतान को संस्कार दें कि जो निर्दोष हो, राग-द्वेष रहित हो, निर्लोभी हो, न भय करे, न भय पैदा करे, अहिंसक हो वही व्यक्ति पूज्य है। जो प्रलोभन (परीक्षा में पास करने, नौकरी दिलाने, शादी कराने, संतान पैदा करने, बीमारी दूर करने आदि) देकर अपने को पूज्य मनवाता हो या इन कारणों से बड़ा बनना चाहता हो वह

भगवान या गुरु नहीं है।' अंधविश्वास में न स्वयं उलझें न संतान को उलझायें।

5. 'स्व-पर' -

संतान को भेदज्ञान सिखायें कि यह शरीर ही सब कुछ नहीं है, इसकी सुन्दरता, स्वास्थ्य, सुविधा के लिए पाप नहीं करना, सच में इस शरीर में रहनेवाली आत्मा जो कि अजर-अमर है, अनादि-अनंत है, ज्ञानस्वरूपी है, वही मैं हूँ, वही स्व है।' तन-मन-धन सब पर है। उन्हें दिखायें, उन्हें सिखायें ''**मैं जीव हूँ, मुझमें ज्ञान है, मैं ज्ञान से जानता हूँ। शरीर अजीव है, शरीर में ज्ञान नहीं है, शरीर कुछ नहीं जानता।**''

6. 'कारण-कार्य' -

'हमें लाभ-हानि, यश-अपयश, मान-अपमान, रोग-नीरोग, संयोग-वियोग जो भी होते हैं, वह अपने द्वारा किये गये कर्मों का ही फल है।' इनका कारण कोई और नहीं है, अतः किसी अन्य को दोष न दें हम अपने विचार/कर्म/भाव सुधारें; जीवन में समता/संतोष/समन्वय/सेवा को स्थान दें तो जीवन मंगलमय होगा संतान का भी और हमारा भी।

यही है - '**शान्ति से जीवन जीने की कला।**'

○

15

परिजन हैं बस, तन संबंधी

माता–पिता, सास–ससुर, भाई–बहिन, पति–पत्नी, दादा–दादी और सारी मित्र मण्डली सच में देखें तो मात्र इस तन से ही परिचय/प्रेम करनेवाले हैं, इनका आत्मा से न परिचय है न प्रेम। हम भी अज्ञानता से ही तन को ही आत्मा अर्थात् मैं मानकर, परिजन मुझसे ही प्रेम करते हैं, ऐसा मान लेते हैं।

हम देखते हैं कि यदि हमें बुखार आ जाये, एक्सीडेण्ट हो जाये या सर्दी–जुखाम भी हो जाये तो सभी रिश्तेदार मिलने आयेंगे, अस्पताल में हों तो वहाँ देखने आयेंगे जो आ नहीं सकते वे भी फोन पर हालचाल पूछते हैं, चिन्ता करते हैं, अपने अनुभव के अनुसार सावधानियाँ व औषधियाँ बताते हैं, हम उनके इस स्नेह को पाकर प्रमुदित होते हैं और यदि कोई हमारे हालचाल न पूछे तो बेहाल होते हैं।

दूसरी ओर आत्मा मोह–राग–द्वेष, विषय–कषायों से जल रहा है, जन्म–मरण के कष्ट सहन कर रहा है, परन्तु कोई पूछनेवाला नहीं बल्कि 'हैप्पी बर्थडे' या 'हैप्पी एनीवर्सरी' के सन्देश देकर रोग में प्रमुख जन्म व पापों/कषायों/परिग्रह का मूल कारण यह 'वैवाहिक संबंध' की शुभकामनायें दे रहे हैं।

हम नरक जाने की तैयारी कर रहे हैं, प्रत्यक्ष में तनाव/टेन्शन/आकुलता में जी रहे हैं, वे खुशियाँ मना रहे हैं। हम संसार के कारणभूत अंधविश्वासों/कुरीतियों/दुराचार/भ्रष्टाचार में लगे हैं, कोई रोकने-टोकनेवाला नहीं, बल्कि अनुमोदना करनेवाले ही हैं, क्योंकि परिजन सब तन से ही स्नेह करनेवाले हैं।

प्रिय मित्रो ! आत्मा का अर्थात् मेरा/अपना हितैषी/मित्र/परिजन वही है, जो हमें राग-द्वेष से बचाये, अज्ञान-असंयम-दुराचार से बचाये व सही मार्ग/निर्दोष होने/सच्चा सुख प्राप्त करने के मार्ग पर लगाये। जो हमें विषयों/पापों में लगायें मात्र पड़ौसी स्वरूप तन से ही स्नेह रखें और आत्मा का परिचय भी न जानना चाहें वह हमारे परिजन नहीं हैं। इनसे भी द्वेष नहीं करना और राग करके भी जीवन बरबाद नहीं करना।

यह जीवन देह में रहते हुए देह से रहित ज्ञान-आनंद मूर्ति, अनादि- अनंत, अजन्मे आत्मा को जानने, उसका परिचय प्राप्त करने, उससे ममत्व करके उसके दुखों को दूर करने के लिए प्राप्त हुआ है, मात्र देह की सेवा, शृंगार करने व इस देह की प्रशंसा करनेवालों के प्रति मोह बढ़ाकर संसार परिभ्रमण करने के लिए नहीं।

पल-पल जीवन बीता जाता है।
बीता पल नहीं वापिस आता है।। ❍

16

धैर्य

मित्रो! इस काल में सामाजिक/पारिवारिक/व्यापारिक कोई भी कार्य हो, वह निर्विघ्न/निरंतराय सम्पन्न हो – ऐसा होना संभव नहीं है, क्योंकि हम सब हीन पुण्य लेकर आये हैं। धर्म प्रभावना/आराधना का कार्य भी निरन्तर तथा विघ्न रहित हो सके – ऐसा इस समय में नहीं दिखता। जब विघ्न/व्यवधान आते हैं, उस समय हम विचलित/व्यथित होकर आर्त ध्यान/राग–द्वेष/क्लेश करके पाप का बंधन करते हैं। जबकि होना यह चाहिये कि ऐसे प्रसंग में हम 'धैर्य' धारण कर कुछ समय के लिए शान्ति से बैठ जायें।

जिस तरह हम रास्ते में पैदल जा रहे हों और पीछे से दौड़ते हुए पशु या वाहन आ जायें तो उनसे टकराने/उन्हें हटाने की बजाय एक तरफ खड़े होकर उनको जाने देने में ही हमारी भलाई है। कुछ ही समय में मार्ग पुनः खाली होगा और हम निरापद चल सकेंगे।

इसी तरह जब हमारे कार्य में विघ्न/व्यवधान आयें या असफलता मिले तो घबरायें नहीं। जिस प्रकार व्यापार में

हानि, खेल में हार होना स्वाभाविक है। उसी प्रकार किसी भी पारिवारिक/पारमार्थिक कार्य में असफलता भी स्वाभाविक है।

यदि व्यापारी हानि से या खिलाड़ी हार से मैदान छोड़कर भाग जाये तो कभी भी आगे नहीं बढ़ सकता। राजनेता कितनी बार चुनाव हारता है, फिर भी उसी जनता के बीच जाता है, जिसने उसे वोट नहीं दिये थे और एक बार वह समय आता है कि वह उसी जगह से जीत जाता है, क्योंकि उसने हार के समय भी धैर्य रखा।

असफलता/व्यवधान आने पर घबरायें नहीं शान्ति से विचार करें धैर्य धारण कर समय परिवर्तन का इंतजार करें। विचार व निर्णय करें - 1. यह समय भी बीत जायेगा।

2. सफलता से असफलता या यश से अपयश पापोदय में मिला है तो पुण्योदय आने पर सफलता व यश भी मिलेगा।

3. सदा कर्मोदय एक-सा नहीं रहता क्योंकि हमारे परिणाम/भाव भी एक से नहीं रहते।

4. मित्र या शत्रु भी कर्मोदय से ही होते हैं, अतः आज जो साथ नहीं दे रहे हैं, उनसे भी द्वेष न करें। कर्मोदय बदलने पर आज के विरोधी ही मित्र होंगे, पहले भी यही मित्र रह चुके हैं।

5. मित्रों/कार्यकर्ताओं/सहयोगियों पर विश्वास बनाये

रखें। पद/पैसा चले जाने पर पुनः मिल सकता है, परन्तु विश्वास नहीं मिल सकता।

6. भाषा का संयम बनाये रखें।

हम असफलता/असहयोग में घबराकर/अधीर होकर सामने वाले पर आरोप या हल्के शब्दों का प्रयोग कर जाते हैं, जिनके दाग/घाव सफलता मिलने पर भी सही नहीं होते। अतः प्रतिकूलता में और अधिक सावधानीपूर्वक विनम्र भाषा का प्रयोग करें।

7. हर किसी कार्य या टिप्पणी को अपने ऊपर न लें। असफलता मिलने पर हमें माता-पिता द्वारा दी जा रही सीख भी ऐसी लगती है मानो वह आरोपित कर रहे हैं या आपकी ही कमी बता रहे हैं, जबकि ऐसा नहीं होता।

कभी-कभी संयोग से भी कोई टिप्पणी अपने प्रतिकूल लगती है; पर विचार करें जब कर्मोदय ही प्रतिकूल चल रहा है, उस समय आप अन्य को क्या अनुकूल बना सकेंगे।

8. जिस तरह सफलता में सबका योगदान है, वैसे ही असफलता में भी सभी का योगदान है, परन्तु सफलता में जिस प्रकार घर में मुखिया/दल में कैप्टन का यशगान किया जाता है तो असफलता में भी अपयश उनका ही ज्यादा होगा।

9. सफलता के साथियों को असफलता मिलने पर दोषी मानकर नजर अंदाज न करें।

10. यदि आप कैप्टन नहीं दल के सदस्य हैं तो असफलता में कैप्टन को धकियायें/गरियायें नहीं बल्कि और अधिक नजदीक/विश्वसनीय/सहयोगी होने का विश्वास दिलायें।

मित्रो! व्यापार/उद्योग/परिवार/संस्थान यहाँ तक कि शरीर में भी परिवर्तन होते ही हैं, उनमें कुछ हमें अच्छे लगते हैं कुछ बुरे। पर अच्छा लगनेवाला परिवर्तन जैसे टिकाऊ नहीं है, वैसे ही बुरा लगने वाला भी अनंतकाल नहीं रहेगा।

समय बदलेगा। लोग बदलेंगे। सोच बदलेगा, क्योंकि यह सब बदला है तो एक बार फिर बदलेगा।

यदि 'धैर्य' रूपी मित्र हमारे साथ है तो हमें कोई अशान्ति नहीं दे सकता और हमें शान्ति से रहने से कोई रोक नहीं सकता।

मित्रो! यह मानव जीवन शान्ति से जीने के लिए मिला है।

लौकिक जीवन भी मित्रता/विश्वास/वात्सल्य/सहयोग बाँटने के लिए मिला है, अतः परिस्थितियों के बदलने से कृपया मनस्थिति न बदलें।

समय बीत रहा है। यह वापिस नहीं आयेगा। व्यर्थ की अधीरता/अहंकार में बीता समय हमें लंबे समय तक रुलायेगा।

आओ! हम 'धैर्य' धारण कर धर्म विचार व प्रचार करें। ○

17

समन्वय

शांति से जीवन जीने के लिए जीवन में समन्वय की बहुत अधिक आवश्यकता है। परिवार–समाज–संस्थान सर्वत्र ही जो हमारे सहयोगी होते हैं, आस–पास होते हैं उन सबकी सोच कार्य पद्धति/कार्य करने की क्षमता भिन्न–भिन्न होती है; फिर भी उन सबके बीच एक समन्वय कर्ता ही ऐसा संयोजन करता है कि परिवार समाज या संस्थान व्यवस्थित रूप से चल रहा होता है।

हमारे शरीर में भी जो अंग हैं, वह सभी एक जैसी क्षमता वाले या एक ही कार्यपद्धति के नहीं हैं, परंतु हम उनका समन्वय करते हुए उनसे उनके सामर्थ्य के अनुसार सहयोग लेते हुए कार्य करते हैं। यदि हम सभी को एक जैसा ही कार्य दें या कार्य कराना चाहें या उनकी कार्यक्षमता के अनुसार किसी का अधिक सम्मान किसी का अपमान करें तो यह उचित नहीं है।

जितनी क्षमता दाएँ हाथ में है उतनी बाएँ हाथ में नहीं है एक हाथ की पाँचों उँगलियाँ हैं, उन सबकी आकृति भिन्न–भिन्न है, सबकी सामर्थ्य अलग–अलग है, लेकिन हम उनमें

समन्वय बैठा कर कार्य करते हैं, तभी हमारे लौकिक जीवन के कार्य संपादित हो पाते हैं।

परिवार में माता–पिता, भाई–बहन, भाभी–चाची इत्यादि जो समुदाय रहता है, उनमें अलग–अलग स्थानों से आकर अलग–अलग बौद्धिक स्तर/शैक्षणिक स्तर/शारीरिक और मानसिक स्तर के लोग होते हैं। जब इन सबमें घर का मुखिया समन्वय बैठाकर चलता है तो सभी प्रसन्न रहते हैं।

ऐसे अनेक परिवार देखे हैं कि जहाँ चार–चार पीढ़ियाँ एक साथ रहती हैं, एक रसोईघर में भोजन बनता है। तीन–तीन, चार–चार भाई हैं, वह मिलकर के रहते हैं। छोटे बड़े की बात का आदर करते हैं, तो बड़ा भी छोटे से प्रेम रखते हुए उसको पूरा सम्मान देता है। जब ऐसे परिवार देखने को मिलते हैं तो मन प्रसन्न होता है।

समाज में धनवान–निर्धन, शिक्षित–अशिक्षित/नेतृत्व क्षमता वाले/ कार्यकर्ता/विद्वान तरह–तरह के लोग रहते हैं। सच में देखा जाए तो इसमें कोई छोटा या कोई बड़ा नहीं है। जो समाज का नेता है, वह इन सबमें संतुलन बैठाते हुए जिसका जहाँ उपयोग किया जाना चाहिए, वहाँ उपयोग करता है। जिसको जैसा सम्मान देना चाहिए, उसको सम्मान देता है। जिसका जो योगदान है, उस योगदान को स्वीकार करता

है। इस समन्वय के भरोसे ही समाज निरंतर गतिमान होता है, वर्धमान होता है ।

संस्थान में भी जो पदाधिकारी होते हैं/ट्रस्टी होते हैं। यदि 15 लोग हैं तो सभी 15 एक ही मानसिकता के हों/सबकी कार्यक्षमता एक जैसी हो/सभी एक जैसा समय अथवा धन दे सकें – ऐसा नहीं होता, नहीं हो सकता क्योंकि सभी की परिस्थितियाँ/मनस्थितियाँ अलग-अलग हैं। संस्थान में बहुत कुछ करना चाहते हुए भी किसी के पास समय नहीं है तो किसी के पास उस समय धन दान करने की सामर्थ्य नहीं है या किसी की शारीरिक स्थिति कमजोर हो रही है। इन सबको देखते हुए जो नेतृत्व है, वह सबको योग्य सम्मान देते हुए, सबके बीच संतुलन और समन्वय बैठाते हुए एक टीम की भांति कार्य को आगे बढ़ाता है; तो वह संस्थान निरंतर उन्नति-प्रगति करते हुए एक आदर्श के रूप में स्थापित होता है।

देश में भी जो नेतृत्व कर रहे हैं, वह बिना समन्वय के देश को आगे नहीं ले जा सकते, अलग-अलग दल हैं, अलग-अलग क्षेत्रीय समस्याएँ हैं, अलग-अलग प्रकार की मानसिकता के नेता आए हुए हैं, सबकी महत्त्वाकांक्षाएँ हैं, सबके अपने स्वार्थ हैं और ऐसे में इतने विशाल देश के अलग-अलग जाति-भाषा-उम्र-बुद्धि के लोगों के साथ रह

करके काम बिना समन्वय के नहीं किया जा सकता है।

यदि हम चाहते हैं कि हम घर–परिवार–समाज–संस्थान में शांति से रहें, प्रगति करें तो हमें चाहिए कि हम समन्वय का गुण सीखें। समन्वय में 'अहम्' नहीं है 'हम' है। जहाँ केवल मैं की मुख्यता है, वहाँ पर समन्वय नहीं हो सकता। जहाँ पर हर छोटी–बड़ी बात में कार्य क्षमता को देख करके ही या स्वार्थ को देख करके ही, हम किसी को आगे बढ़ाना चाहें, किसी को पीछे ले जाना चाहें, वहाँ पर समन्वय का अभाव होने से दल, दलदल के रूप में परिणत हो जाएगा, परिवार बिखर जाएगा, समाज बिखर जाएगा। उन्नति न हो करके अवनति हो जाएगी, इसलिए मित्रो! यदि हम चाहते हैं कि हम समाज/परिवार/ संस्थान/देश की उन्नति में सहभागी बने या हम इन विविध संस्थाओं के अग्रणी नेता बने तो बहुत आवश्यक है कि हम 'समन्वय' रूप गुण को स्वीकार करें।

जितना अधिक समन्वय बैठाने की जिसमें क्षमता होगी, वह उतना ही अधिक नेतृत्व दे सकेगा।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी देखें तो अनेक प्रकार के कर्म, अनेक प्रकार के उदय के कारण से अलग–अलग प्रकार के विभावों का होना, अलग–अलग प्रकार की परिस्थितियों का होना, अनंत गुण हैं –अनंत धर्म हैं, अनंत धर्मों का परस्पर विरोधी होना। इनके निरूपण के लिए जिनवाणी में अलग–

अलग प्रकार के कथनों का प्रयोग है, जो परस्पर विरोधी दिखलाई देते हैं। उन कथनों के बीच यदि हम समन्वय नहीं बैठा पाएंगे तो आत्मोन्नति/आत्मशांति भी प्राप्त नहीं कर सकते।

मित्रो! समन्वय का अर्थ यह नहीं है कि सभी समान हो गए या हमने सबको समान मान लिया है। व्यवहार नय के कथन को निश्चय के समान मान लिया है। निश्चय के कथन को व्यवहार के समान मान लिया है – ऐसा नहीं, अपितु व्यवहार की जो उपयोगिता है, उस उपयोगिता को स्वीकारना और निश्चय की जो उपयोगिता है, उसे उस उपयोगिता की दृष्टि से स्वीकार करना।

किसी की अधिकता किसी की कमी को स्वीकार करके उसका कहाँ कैसे उपयोग किया जा सकता है, उसका नाम समन्वय है। अगर हमारे जेब में 50 का नोट है, 500 का नोट है तो हम यह समझ सकें 50 का नोट कहाँ पर उपयोग करना है और 500 का कहाँ उपयोग करना है, 50 के नोट को धिक्कारो मत, उसके प्रति हीनता का भाव मत लाओ। वह भी कहीं न कहीं उपयोगी है, उसका भी सम्मान करें। मैं समझता हूँ इसी का नाम समन्वय है और यदि ऐसा समन्वय हमारे जीवन में आता है तो हम शांति से जीवन जीने की ओर अग्रसर हो सकते हैं क्योंकि एकमात्र यही है '**शान्ति से जीवन जीने की कला**'। ○

18

संकुचित/स्वार्थी दृष्टि बदलिये

प्राय: मनुष्य की यह प्रवृत्ति रही है कि वह दूसरों के द्वारा किये गये सहयोग को तो भूल जाता है, पर कब सहयोग नहीं किया इसको याद रखता है।

जैसा कि किसी ने कहा भी है कि 'आप कब सही थे, कोई याद नहीं रखेगा; पर आप कब गलत थे कोई नहीं भूलेगा।'

यह मनोवृत्ति निश्चित ही दु:खद है तथा स्व-पर के लिए अशान्ति/क्लान्ति/विसंवाद/विवाद का भी कारण है। यदि हमारी स्वयं की ऐसी वृत्ति है तो प्रयास करना चाहिए कि इसमें बदलाव हो।

हम देखते हैं कि परिवार/समाज/संस्थान में तन-मन से कार्य करते हुए परिवार/समाज/संस्थान को ऊँचाइयों तक ले जाने के लिए अपना सब कुछ समर्पित करने के बाद भी यदि अनजाने में भी कोई त्रुटि हो जाती है/कमी रह जाती है तो सभी उस बात को पकड़ करके ही उस व्यक्ति को लांछित करते हैं /अपमानित करते हैं/पदच्युत करने का प्रयास करते हैं।

बुंदेलखंड में इस संबंधी एक कहावत भी चलती है कि 'खिला पाए का नाम नहीं होता, गिरा पाए का नाम हो जाता है।'

अर्थात् जैसे कोई पड़ोसी किसी के बालक को प्रतिदिन गोद में खिलाता हो, वह बच्चा उसके ऊपर गंदगी कर देता हो, चिंवटियाँ भरता हो, कई तरह से परेशान करता हो और ऐसा यदि वह महीनों भी करे तो भी कोई धन्यवाद/आभार नहीं देता, परंतु खिलाते हुए गलती से यदि हाथ से वह बच्चा छूट जाए और उसे खरोंच भी आ जाए तो सभी कहते हैं मेरे बच्चे को गिरा दिया, उनको लेना नहीं आता, खिलाना नहीं आता, वह जबरदस्ती ले गए व मेरे बच्चे को गिरा दिया। कहीं सिर में लग जाती तो? सिर फट जाता तो? वह तो मेरे बच्चे को पसंद ही नहीं करते। वह तो हमारी खुशी से जलते हैं आदि।

इस तरह से जो इतने दिन खिलाया, गंदगी सफाई की उसके लिए तो कोई याद नहीं करता, परंतु एक बार हाथ से गिर गया (गिराया नहीं है) तो भी लोग बदनाम करते हैं।

इसी तरह सामूहिक परिवार में जो सबकी सुनता है, सबके मन की करता है, अपनी इच्छाओं को दबाता है और सबको साथ लेकर चलता है, परन्तु किसी कारण से कभी

किसी एक के मन की वह न कर पाये तो वह सामने झंडा लेकर खड़ा हो जाता है। उसे यह कहने में देर नहीं लगती कि आपने हमारे लिए किया ही क्या है ? आपने तो हमारी जिंदगी ही बरबाद कर दी।

बस इस तरह की मानसिकता ही परिवार के विखण्डित होने के कारणों में एक महत्त्वपूर्ण कारण बन जाती है।

इसी प्रकार समाज और संस्थान में भी जो कार्यकर्ता तन-मन-धन लगा करके कार्य करते हैं, संस्था की उन्नति करते हैं, तब धन्यवाद देने वाले कम लोग होते हैं। उस समय भी लोग यह तो अपने नाम के लिए कर रहे हैं, कुछ लाभ होगा, इन्हें घर पर तो कुछ काम है नहीं, घर से तो यह परेशान हैं, इसप्रकार की बातें करते हैं और जब अगर कुछ कार्य बिगड़ जाए या कुछ कार्य बिगड़ने की आशंका मात्र हो जाए तब तो लोग पीछे पड़ जाते हैं/लांछित करते हैं, पदच्युत करने की बात करते हैं।

मैं समझता हूँ कि यह मानसिकता किसी एक की नहीं है, एक घर की नहीं है, एक प्रदेश की नहीं है, शायद सर्वत्र है; परंतु इस मानसिकता को प्रशंसनीय तो शायद कोई नहीं मान सकता। (लगभग सभी कहीं न कहीं भुक्तभोगी हैं या इस मानसिकता से ग्रस्त हैं) अतः यह मनोवृत्ति यदि प्रशंसनीय

नहीं है फल भी तो सर्वत्र अविश्वास/अशान्ति/द्वेष ही है तो क्यों ना इसमें परिमार्जन करने का प्रयास किया जाए।

हमें इस बात को कहना चाहिए, दूसरों को समझाना चाहिए कि भाई! जिसने परिवार/संस्था/समाज को इतनी ऊँचाइयों पर पहुँचाया है, वह उसे नीचे गिराना तो चाहता ही नहीं है (इसलिए यह तो नहीं कहेंगे कि उसे नीचे गिराने का अधिकार है) लेकिन कोई निर्णय कदाचित उन्नति में बाधक हो गया हो तो भी हमें जो पूर्व में उन्नति के लिए किए गए कार्य हैं, उनको भूलना नहीं चाहिए और इस भूल को याद रखते हुए उन अच्छाइयों को भुलाना नहीं चाहिए।

आप कह सकते हैं कि जब इसप्रकार की मनोवृत्ति अधिकतम है ही, सभी लोग करते ही हैं, ऐसा होता ही है तो आप यह क्यों लिख रहे हैं?

मेरा लिखने का एकमात्र अभिप्राय यह है कि मित्रो! सच में सामूहिक परिवार को लेकर चलने वाले सदस्यों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं का मिलना, समर्पित कार्यकर्ताओं का मिलना, निरपेक्ष भाव से काम करनेवालों का मिलना बहुत दुर्लभ है। बहुत ही मुश्किल से कोई समाज या संस्थान या संगठनों में आज जुड़ना चाह रहा है। जिन संस्थानों और समाज से कोई अर्थ लाभ नहीं है, राजनीतिक लाभ नहीं है

उनसे आज कोई कार्यकर्ता जुड़ना नहीं चाहते। (राजनीतिक संगठनों में तो कुछ पद मिलने की, कुछ राजनीतिक लाभ मिलने की आशा वहाँ पर दिखाई देती है।) सामाजिक कार्यों में तो समय और धन लगाना ही है, देना ही है, श्रम करना ही है यहाँ से केवल तत्त्व प्रचार हो जाने की संतुष्टि के अलावा और कुछ प्राप्त नहीं होता, अतः ऐसे कार्यकर्ताओं के द्वारा कदाचित् कोई त्रुटि होती है; मन-वचन- काया से किसी प्रकार की कोई गलती होती है तो जो समाज का नेतृत्व है, उसे जो कार्यकर्ता हैं, उनको परस्पर में समन्वय करते हुए उनकी कमियों को गौण करने या दूर करने का प्रयास करना चाहिए, उसको हाईलाइट करके उसे अपमानित या पदच्युत करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

जितने भी पारिवारिक/सामाजिक कार्य हैं, उनमें अनेक कार्यकर्ताओं का सहयोग होता है सभी का सहयोग है, सभी का योगदान है यह कथन किया जाता है, किया जाना चाहिए। लेकिन यह भी सत्य है कि किसी बस को चलने में जहाँ एक नट-बोल्ट का योगदान है, वहीं इंजन का भी है लेकिन जितना योगदान इंजन का है उतना योगदान नट-बोल्ट का नहीं माना जा सकता है। नट-बोल्ट हर दो पाँच किलोमीटर पर 10-20 रुपये में नए लाए जा सकते हैं, बदले जा सकते

हैं और दूसरे लगाए जा सकते हैं। परंतु इंजन में खराबी हो जाए तो इंजन इतनी आसानी से दूसरा नहीं मिलता, इतनी आसानी से कम राशि में बदला नहीं जा सकता इसलिए जहाँ यह कहना उचित है कि सभी का योगदान है, सबका सहयोग है किसी एक का नहीं है, वहाँ इस बात को भी समझना अत्यावश्यक है कि कौन इंजन था? कौन स्टेरिंग? कौन क्लच और कौन नट-बोल्ट? यह कहकर हम किसी का अपमान करना चाहते हैं ऐसा नहीं है, पर जिसकी जो भूमिका हो उसको अवश्य समझना चाहिए।

अन्यथा यह मनोवृत्ति तो मुझे लगता शाश्वत है, दूसरों के दोषों को देखना कमियों को देखने की आदत है। लेकिन मेरी भावना तो यही है कि हम इससे कुछ अलग हटकर करें।

मेरे पाठक, मेरे स्नेही, जन भावनाओं से कुछ ऊपर आएँ, कुछ अलग हटकर काम करें और हम खिलाने वाले को भी नाम दें और किसी कारण से यदि बालक गिर गया है (परिवार समाज संस्थान में कोई त्रुटि रह गई है) तो उसका दोष नहीं है ऐसा माने क्योंकि जो खिलाने के लिए इतना लगा हुआ है, वह गिराने का प्रयास नहीं कर सकता है। गिर गया है, इसका उसके मन में खेद है, हमें उसके खेद को दूर करना चाहिए। भाई गिर गया तो क्या हुआ? मेरे हाथ से भी गिर सकता था।

अपने आप भी तो बच्चा गिर सकता था। चोट लग सकती थी। कुछ भी हो सकता था और अभी भी हो जाता तो हो जाता, मुझे पता है कि आपका मन क्षति पहुँचाने का नहीं है।

आचार्यों ने कहा है '**न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति**' हम किये गये अनेक उपकारों/सहयोगों को किसी एक अनजाने असहयोग या कमी से भुलायें नहीं।

यह चिंतन धारा परिवार/समाज/संस्थान में 'शांति से जीवन जीने की कला' सिद्ध हो सकती है। ❍

अब तो हमको चलना होगा

मोह नींद में बहुत सो लिए, अब हमको तो जगना होगा।
बैठे-बैठे समय गँवाया, अब तो हमको चलना होगा।।
मानव तन पाया है उत्तम, दीर्घ आयु अरु सुन्दर काया।
मिली इन्द्रियाँ, स्वास्थ्य लाभ अरु मनवांछित पाई है माया।।
विषय-भोगमय जीवन दुःखकर, निज हित हेतु तजना होगा।।
मनमाने देवों को पूजा, शास्त्र पढ़े सब राग बढ़ाने।
गुरुओं की सेवा कर करके, धन-पद-यश पर ही ललचाने।।
वीतराग निर्दोषरूप लख, अब उनको ही भजना होगा।।
कर्तव्यों से दूर रहे हम, अधिकारों को ही बस चाहा।
दिया किसी को कभी नीर न, पर दुग्धामृत सबसे मांगा।।
यह अन्याय अनीति है बंधु, इसको तो अब तजना होगा।।
तन-मन-धन को अपना माना, राग-द्वेषमय निज को जाना।
मैं अनादि चैतन्य तत्त्व हूँ, गुण अनंत से भरा खजाना।।
सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चरण से, अब तो निज को सजना होगा।।

19

सोच बदलें और शांति से जिएं

जिस समाज में हम रहते हैं, वहाँ पर हृदय से प्रशंसक कम और निंदक/आलोचक बहुत अधिक हैं। आलोचना ईर्ष्यावश/द्वेषवश या आदत के अनुसार लोग समय-समय पर जहाँ-तहाँ एक-दूसरे की किया ही करते हैं। निंदा रस का पान करते हुए लोगों को बहुत ही आनंदानुभूति होती है।

ज्यों-ज्यों हमें सफलता/यश मिलता है, प्रशंसक बढ़ते हैं त्यों-त्यों अपने नजदीकी ही जो कुछ कर पाने में असफल रहे हैं या अपयश कीर्ति से जिन्हें यश नहीं मिल पाता वे हमारी सफलता के निमित्त व अपनी अज्ञानता से ईर्ष्या करने लगते हैं, अन्य से बुराई करने लगते हैं, वह यह नहीं जानते कि परनिंदा का फल नीच गोत्र कर्म के बंध अर्थात् अपयश का कारण होगा। इस तरह अपना बुरा करके हमारी निंदा करते हैं, उन पर द्वेष नहीं करुणा करो और सावधान हो जाओ कि जो बुराई बताई जा रही है, वह सच में हममें है तो नहीं, यदि है तो दूर करें और नहीं है तो विचार करें कि दोष न होने पर भी अपयश मिल रहा है, यह हमारे पूर्व कृत कर्मों का ही दोष है।

दूसरे की निंदा करने से हमें नीच-गोत्र का आस्रव-बंध होता है, यह तो समझते ही नहीं हैं, परंतु किसी अच्छे कार्य में लगे हुए व्यक्ति की निंदा करने से यदि वह उन कार्यों से हट गया तो ऐसे कार्य जिम्मेदारी पूर्वक कौन करेगा? इसका भी विचार उनको नहीं आता है। (किसी को निर्दोष करने की भावना से मित्रवत् उसके दोष बताना प्रशंसनीय है और अपयश फैलाने की भावना से विद्यमान-अविद्यमान दोषों को कहना निंदनीय/कुत्सित है।)

परिवार/समाज/देश में घर बैठे आलोचना करना एक सुखद कार्य माना जाता है। चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो, व्यापारिक क्षेत्र हो, क्रीड़ा का क्षेत्र हो या धार्मिक क्षेत्र हो सर्वत्र ही निंदकों की भरमार है।

निंदा करने का एक बड़ा कारण यह भी है कि निंदा करने में, निंदा के अलावा कुछ करना नहीं होता। यदि समर्थन करते हैं तब तो तन-मन-धन-समय आदि देना पड़ेगा। निंदा करने में तो 'उठाई जीभ, तलुवे से मार दी' और काम खतम। सच में यह प्रवृत्ति खोटी है, त्याज्य है।

ऐसे वातावरण में हम स्वयं की सोच बदलते हुए उन कटाक्षों से बचते हुए अपने गंतव्य की ओर निरंतर अग्रसर होते रहेंगे, तभी हम शान्ति से जीवन जी सकते हैं।

जैसे जब कोई किसी सदस्य की निंदा करते हुए कहता है कि 'वह बहुत तेज है, उससे सावधान रहना।'

यह सच में तो उसने उसकी निंदा करने के लिए, बुराई बतलाने के लिए ही वाक्य का प्रयोग किया गया है। 'तेज' कहकर वह सामनेवाले को जवाब देनेवाला, अपना कार्य सिद्ध करनेवाला या कहें कि स्वार्थी सिद्ध करना चाहता है। (जबकि अक्सर देखा जाता है कि जो जिसका स्वार्थ सिद्ध न होने दे, उनकी फालतू की बकवास न सुने, उसे लोग तेज कहकर किनारे लगाना चाहते हैं।)

परंतु यदि हम 'शांति' से जीवन जीना चाहते हैं तो हम इसे इस रूप में ग्रहण कर सकते हैं कि जिसने मुझे कहा कि 'वह बहुत तेज है' उसने मेरे कार्य की प्रशंसा ही की है ।

'मैं तेज हूँ।' इसका अर्थ यह है कि मैं जिस कार्य को करना चाहता हूँ, जिस कार्य की जिम्मेदारी लेता हूँ, उसे किसी भी रूप में पूरा करने के लिए कटिबद्ध रहता हूँ। जो सहयोगी हैं यदि वह उस कार्य को करने में कमजोर हो रहे हैं तो उन्हें किसी भी प्रकार से प्रेरणा अथवा ताड़ना देते हुए कार्य करने के लिए तैयार करते हैं। यदि कार्य में सफलता दिखाई नहीं देती है तो सहन नहीं होती, क्यों? क्योंकि कार्य को सफलता तक पहुँचाने की जिम्मेदारी हमने ली है, अतः

सफलता मिलनी ही चाहिये।

यदि हम ऐसा सोचते हैं कि 'तेज' कहकर हमारे लिए एक उत्कृष्ट/समर्पित कार्यकर्ता के रूप में माना गया है यह मेरी निंदा नहीं है यह उनकी समझदारी है कि उन्होंने मेरे कर्तव्य निर्वहन को देखते हुए इन शब्दों का प्रयोग किया है। अतः उनको धन्यवाद।

साथ ही वह हमारे मित्र ही हैं, जो हमारे व्यवहार में कमी बतला रहे हैं, मुझे आत्मावलोकन करके यदि कमी है, तो दूर करना चाहिये। इसीलिये किसी कवि ने सही ही कहा है –

निंदक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी बिन साबुना, निर्मल करे सुभाय।।

निंदक, शत्रु नहीं हैं; वह तो हमारे दोष बताकर हमारे स्वभाव को निर्मल करते हैं अतः कवि कहता है निंदक को कुटिया बना करके अपने पास ही रखो। (पर निंदक बनना योग्य नहीं है)।

पर यह भी ध्यान रखना कि कवि ने निंदक को घर के पास रखने के लिए कहा है, घर में रखने के लिए नहीं कहा। वह शत्रु नहीं हैं पर मित्र भी नहीं है जो हमारा उत्साहवर्धन करें, मार्गदर्शन करें। बस उनके वाक्यों का सकारात्मक अर्थ लेकर बढ़े चलो तभी शान्ति से जीवन जी सकते हैं। ❍

20

भगवती भवितव्यता

विपाशा जैन को साहित्याचार्य कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त होने पर जयपुर में पुरस्कृत होना है, पर वह कारणवश जयपुर नहीं पहुँच पा रही है, अतः पुरस्कार प्राप्त करने हेतु मैंने जयपुर यात्रा हेतु रेलवे स्टेशन के लिए प्रस्थान किया, पर अरे यह क्या ? मार्ग में ही पता चला कि दोपहर की रेल निरस्त कर दी गई है। यह क्यों ? ऐसा क्यों ? नाना अनर्थक विकल्प करते हुए रेलवे स्टेशन के स्थान पर बस स्टेण्ड पहुँच गया।

संयोग/सौभाग्यवश बस स्टेण्ड पहुँचते ही बस मिल गयी व बस में एक ही सीट खाली थी और मैं भी अकेला ही था। अतः भाग्य की सराहना करते हुए बस में बैठकर प्रसन्नता-पूर्वक चल पड़ा।

बस से राजसमंद होते हुए निकल रहा हूँ। उदयपुर से लगातार मार्ग के दोनों ओर संगमरमर के अंबार हैं। सर्वत्र बड़ी-बड़ी मशीनों से निकाले, काटे व तराशे गये संगमरमर के शिलाखण्ड व शिलापट दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

बस चल रही है, विचार भी चल रहे हैं। विचार आया कि

सभी शिलाखण्ड इस राजस्थान की वीरभूमि में से निकलकर फैक्ट्री/दुकानों पर पहुँच रहे हैं; परन्तु उनमें से कुछ शिलाखण्ड महावीर-राम बनकर पूजित हो रहे हैं, तो कुछ गांधी-सुभाष-भगतसिंह आदि की मूर्ति बनकर सम्मानित हो रहे हैं तो कोई मंदिर के फर्श में लगकर मंदिर की शोभा बढ़ा रहे हैं, तो कुछ लगाए जा रहे हैं मकान की बैठक व रसोईघर में तो कुछ शौचालय या स्नान गृह जैसे स्थान पर लगाए जा रहे हैं, और कुछ शिलाखंड खंड-खंड होकर जहाँ से जन्म हुआ था वापिस वहीं धूल धूसरित हो रहे हैं। आखिर ऐसा क्यों होता है? यह भी नहीं कह सकते कि उनका भाग्य या वह अपने कर्मों का फल पा रहे हैं क्योंकि जड़-पदार्थों को कर्मबंधन नहीं होता।

तब आगम वचन स्मृति पथ में आये कि एक ही भूमि से निकले हुए, एक ही गोडाउन से खरीदे गए प्रस्तर खण्डों की विविध दशायें न तो भूमि के कारण हैं न ही मशीन, दुकानदार, खरीदार, कारीगर के कारण सच में यह सभी दशायें उनकी अपनी योग्यता/भगवती भवितव्यता के कारण ही हैं जो कि अलंघ्य है।

ओहो! तो बस इसी तरह नित्य निगोद से निकले जीवों में से भी कुछ जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रपूर्वक अरहन्त-

सिद्ध बन रहे हैं, तो कुछ आचार्य–उपाध्याय–साधु तो कुछ सम्यग्दर्शन ही प्राप्त कर रहे हैं और कुछ जीव मिथ्यात्व सहित देवगति के इन्द्रिय सुख में मस्त हैं, कुछ मनुष्यगति के शारीरिक, मानसिक कष्टों से त्रस्त हैं, धन–पद–यश पाने के लिए दौड़ लगा रहे हैं, जिनमें कुछ पा रहे हैं, कुछ खो–रो रहे हैं, तो कुछ नरक–तिर्यंचगति के भयंकर कष्ट सह रहे हैं और कुछ जीव दुर्लभ त्रस पर्याय का सदुपयोग किये बिना पुनः निगोद दशा को प्राप्त कर रहे हैं।

इन सब विविधताओं का कारण विचारने पर यही समझ में आता है कि बाहर का वातावरण/संयोग एक जैसे होने पर भी, प्रेरक एक जैसे होने पर भी दशाओं में भिन्नता है तो यह सब जीवों की अपनी अलंघ्य भवितव्यता ही है।

मनुष्य गति, निर्दोष धर्म पाकर भी ऊर्ध्वगमन न करके जीव अधोगमन क्यों कर रहा है, इसके बुद्धि न पुरुषार्थ क्यों विपरीत हो रहे हैं ? तब मनीषियों का वचनामृत इस समस्या का समाधान करता है कि –

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोह्यपि तादृशः।
सहायतास्तादृशा एव, यादृशी भवितव्यता।।

जिसकी जैसी भवितव्यता है तदनुसार निमित्त, बुद्धि,

पुरुषार्थ, समय सब सहज ही एकत्र होते हैं, कार्य के अनुरूप पाँचों समवाय मिल जाते हैं यही सिद्धान्त है। उपदेशक निमित्त जुटाने या पुरुषार्थ करने का उपदेश अवश्य देते हैं।

भवितव्यता को समझ कर कर्तृत्व के भार को उतार कर, निर्भार होना चाहिये, भवितव्यता किसी की चाह या प्रयास से बदली नहीं जा सकती। इसी भवितव्यतावश विपाशा नहीं, मैं तथा रेल से नहीं, बस से जयपुर जा रहा हूँ क्योंकि '**अलंघ्य-शक्ति भवितव्यतेयम्**'। ❍

उड़ान

मित्र पूँछते हैं सब मुझसे, कब तक उड़ते जाओगे।
थोड़ा सा विश्राम करो, क्या अपनी हद बतलाओगे ?
मैंने कहा मित्रवर सुन लो, निशदिन उड़ते जायेंगे।
मत बतलाओ हद तुम मेरी, हम भी नहीं बतायेंगे।।
वीतराग-सर्वज्ञ की वाणी, घर-घर तक पहुचायेंगे।
मैं अनंत में उड़ूँ भले ही, कर्म पाश फैलायेंगे।।
सत्य अहिंसा अनेकान्त की, शान्ति सुरभि महकायेंगे।
मन में है उत्साह बहुत, कुछ करके हम दिखलायेंगे।।
उच्च गगन में, तीव्र पवन से, भी हम जा टकरायेंगे।
विघ्न बाज यदि सन्मुख आयें तो भी न घबरायेंगे।।
पंखों में है अद्भुत शक्ति, दिशि-दिशि उड़ते जायेंगे।
'**सुखायतन**' तक चलना है अब, सरहद सभी मिटायेंगे।।

समर्पण द्वारा प्रकाशित अन्य साहित्य

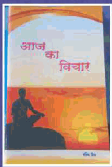

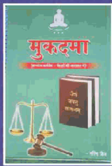

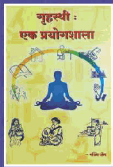

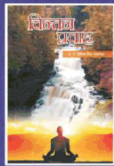

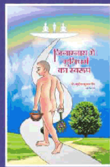
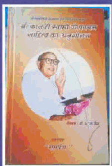
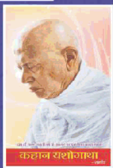

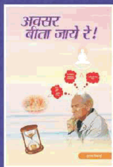

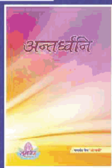

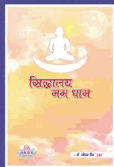

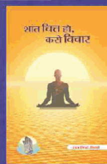

समर्पण का मासिक प्रकाशन संस्कार सुधा

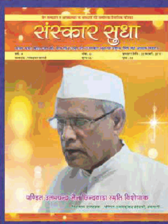

संस्कार तीर्थ

शाश्वत धाम

उदयपुर

श्री कुन्दकुन्द कहान शाश्वत पारमार्थिक ट्रस्ट